कृषि उद्यान दर्पण

Volume 1 : Issue1 : March 2021

Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors

SAAHAS

Reference Number 1358419

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Artical Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक	डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी
वरिष्ठ संपादक	डॉ. रोशन लाल राऊत, डॉ. शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ
सह सम्पादक	डॉ. नीलम राव रंगारे डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह अर्घ्य मानी डॉ. नियति जैन प्रखर खरे
पांडुलिपि संपादक	स्निग्धा हल्दार
कंटैट लेखक/स्तंभ लेखक	डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय
फोटोग्राफी	स्वप्निल सुभाष स्वामी
वेब एडिटर	प्रितेश हल्दार
प्रकाशक	**Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- **कृषि कानून : वरदान या अभिशाप**
  डॉ. प्रियंका कुमारी 3
- **रबी फसलों में रासायनिक खरपतवार प्रबन्धन**
  डॉ. आशीष कुमार श्रीवास्तव एवं डॉ. खलील खान 5
- **प्रमुख औषधीय व मसाला फसलों की उपयोगिता**
  डॉ. अर्चित गुप्ता एवं डॉ. हेमलता पन्त 11
- **विपरीत मौसम में फलोद्यानों का उचित प्रबन्धन**
  डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी 14
- **अखरोट की खेती**
  के. के. प्रामानिक, के. के. शुक्ला, संतोष वाटपाडे, मधु पटियाल एवं जितेन्द्र कुमार 16
- **मध्य प्रदेश में आम की सघन बागवानी–दोगुनी आय का साधन**
  नकुल राव रंगारे, एस. के. पांडे, भरत कुमार एवं गजेन्द्र राणा 18
- **पौष्टिक पशु आहार : अजोला एक सशक्त माध्यम**
  डॉ. सुनील कुमार जाटव, डॉ. आर.एल. राऊत, डॉ. बी.के प्रजापति, डॉ. एस.आर. धुवारे, डॉ. एम.पी. इंगले, श्री सुखलाल वास्केल, जितेन्द्र मर्सकोले, हेमंत राहंगडाले एवं धमेन्द्र आगाषे 21
- **भारत में मधुमक्खी पालन**
  स्वप्निल पाण्डेय, शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ, अशोक कुमार वर्मा, बालकृष्ण नामदेव और बलवीर सिंह 25
- **ग्लैडियोलस की वैज्ञानिक खेती**
  डॉ. सुनील चन्द्रा 30
- **जैविक विधि द्वारा टमाटर की उन्नत खेती**
  अनीता केरकेट्टा, एवं डॉ. विजय बहादुर 32
- **मानव स्वास्थ्य के लिए एक जैविक पोषण वाटिका**
  सुखलाल वास्केल, डॉ. रोशनलाल राऊत, डॉ. सुनील कुमार जाटव, बी. के. प्रजापति, एस. भार धुवारे 37
- **फलदार पौधों में पौध वास्तुः कितना आवश्यक एवं लाभकारी**
  डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय 40
- **दुधारू पशुओ में बाँझपन की समस्या एवं निदान**
  डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह, अजीत सिंह एवं गौरव जैन 43
- **बंजर भूमि में सीताफल की जैविक खेती**
  डॉ. नकुल राव रंगारे, रोमिला खेस्स एवं गजेन्द्र कुमार राणा 46
- **भारत में जी.एम. फसलें और विज्ञान की राजनीति**
  डॉ. विजय बहादुर 50

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

कृषि कानून : वरदान या अभिशाप

प्रियंका कुमारी

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली

पत्राचारकर्ता : dripriyanka.biotech@gmail.com

प्रस्तावना

आज देशभर में किसान विद्रोही के रूप में सड़कों पर है जो किसान हमारे देश में पूज्यनीय और सम्मानीय है वो आजकल आंदोलन का हिस्सा बन गये हैं। भारत सरकार ने उनके लिए कृषि से सम्बन्धित कानून पारित किये हैं। ये कानून सरकार की तरफ से उनके लिए हितकारी है परन्तु किसानों को अपनी परम्परागत प्रणाली ही हितकर प्रतीत हो रही है। किसानों को लगता है कि नये कानून से उनके भविष्य में अनेकों समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। ये कानून और कैसे किसानों के लिए हितकारी या वरदान साबित हो सकते हैं? परम्परागत कृषि प्रणाली से कैसे भिन्न है और किस प्रकार समस्याओं का स्रोत बन सकते हैं? कृषि के 3 कानून पारित किये गये हैं आइये जानने की कोशिश करते हैं ये कानून एक दृष्टि में–

1. पहला कानून-

इस कानून के अनुसार सभी किसान अपनी फसल को पूरे देश में कहीं भी बेचने के लिए स्वतन्त्र है। एक राज्य को दूसरे राज्यों के साथ मिलकर कारोबार बढ़ाने के लिए भी स्वतन्त्र किया गया है। इसमें आने वाले सभी प्रकार के खर्चों को कम करने के लिए भी कहा गया है। किसानों के अनुसार इस कानून के आने के बाद वो एक प्रतियोगिता का हिस्सा बन जायेंगे तथा उन्हें डर है कि मंडी व्यवस्था खत्म होने से वो उचित मूल्य पर अपना अनाज नही बेच पायेंगे। हालांकि इससे पूर्व वे मंडी में होने वाले खर्च से स्वतः ही परेशान थे।

2. दूसरा कानून-

इस कानून के अनुसार सरकार द्वारा कृषि करारों पर राष्ट्रीय ढाँचे का प्रावधान किया गया है। यह कानून कृषि पैदावरों की बिक्री, फार्म सेवाएँ, कृषि बिजनेस फर्मों, प्रोसेसर्स, थोक विक्रेताओं, बड़े खुदरा विक्रेताओं और निर्यातकों के साथ किसानों को जुड़ने के लिए मजबूत करता है। संविदा किसानों को उच्च गुणवत्ता के बीज की आपूर्ति करना, तकनीकी मदद और फसल की निगरानी, कर्ज की सहुलियत और फसल बीमा पहले की तरह ही उपलब्ध करायी गयी है।

3. तीसरा कानून-

इस कानून के अनुसार पारम्परिक फसल जैसे अनाज, दाल, तिलहन, खाने वाला तेल, आलू प्याज आदि को जरूरी चीजों की सूची से हटाया गया है। जिसके कारण किसान किसी भी प्रकार की फसल, जिसकी भी बाजार में ज्यादा जरूरत है फसलों को उगाकर सही मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। इस कानून के द्वारा मुकाबले के कारण बाजार में होने वाली कालाबाज़ारी पर रोक लगायी जा सकती है।

किसान आंदोलन के तथ्य

1. प्रथम कानून के कारण किसानों को जो स्वतंत्रता दी गई है उसमें मंडी व्यवस्था खत्म हो रही है। उस मंडी व्यवस्था में न्यूनतम समर्थन मूल्य लागू होता है जिसके कारण प्रत्येक किसान को कम से कम एम.एस.पी. तो मिलता ही था। इस प्रकार किसानों को लगता है कि उनका एम.एस.पी. खत्म किया जा रहा है।

2. किसानों को लगता है पहले उनका मुकाबला केवल अपने राज्यों में स्थित किसानों से था परन्तु अब बाहर के किसानों के साथ भी है। जिससे उन्हें उचित दाम नहीं मिल पायेगा।

3. किसानों के अनुसार उनके साक्षर न होने के कारण अनुबंध कृषि या अन्य सेवाओं को लाभ लेने के लिए वे अब साक्षर लोगों पर ही निर्भर रहेंगे।

4. हमारे देश में अधिकतर छोटे किसान है और उन सभी को लगता है कि इस कानून से सिर्फ बड़े किसानों को ही फायदा मिल सकता है क्योंकि छोटे किसानों को जमीन भी छोटी होती है और बड़ी कम्पनी को फसल अधिक मात्रा में चाहिए होगी तो वे इस योजना का लाभ नहीं ले पायेंगे।

5. पारम्परिक फसलों की बुवाई के लिए किसानों को अपनी जमीन एक सुरक्षा देती थी उनको इस कानून से खतरा

महसूस हो रहा है क्योंकि जो पारम्परिक फसलें होती थी वे उसकी बिक्री के प्रति भी आश्वस्त होते थे परन्तु अब तो कोई भी कुछ भी उगाकर मुकाबले में शामिल हो जायेगा, जिससे उन्हें अपनी फसल का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए अधिक मेहनत और पैसा खर्च करना होगा।

इस प्रकार यह आंदोलन अपनी प्रगति पर है किन्तु यहाँ कुछ समझने और समझाने योग्य तथ्य है और कुछ विशेष प्रश्न जो दिमाग में उठते हैं वे यह कि क्या सचमुच ये कानून किसानों के पक्ष में नहीं है या किसानों को अपना पक्ष दिखाई नहीं दे रहा है।

तार्किक सन्देश

- केन्द्र सरकार तीनों कानून के मसौदे को संसद में पेश करते वक्त ही स्पष्ट कर चुकी है कि न तो मंडिया बंद होगी, न ही एम.एस.पी. प्रणाली खत्म होगी। इस कानून के जरिये पुरानी व्यवस्था के साथ-साथ किसानों को नए विकल्प भी उपलब्ध कराए जा रहे हैं। यह उनके लिए फायदेमंद है।
- प्रथम कानून के अनुसार किसानों के पास उत्पाद की बिक्री के लिए ज्यादा विकल्प उपलब्ध होंगे। बिचौलियों का रास्ता बंद हो जाएगा। प्रतिस्पर्धी डिजिटल व्यापार को बढ़ावा मिलेगा और किसानों को बेहतर कीमत मिल पायेगी।
- अनुबंध फसल पहले भी अलिखित होती थी। तब निर्यात होने लायक आलू, गन्ना, कपास, चाय, कॉफी व फूलों के उत्पादन के लिए ही अनुबंध किया जाता था। इसके अलावा कुछ राज्यों ने पहले के कृषि कानून के तहत अनुबंध कृषि के लिए नियम बनाये थे।

कृषि सेवा करार-

सरकार स्पष्ट कर चुकी है कि इस कानून का लाभ देश के 86% किसानों को मिलेगा। किसान जब चाहे तोड़ सकते हैं लेकिन कंपनियां अगर अनुबंध तोड़ती है तो उन्हें जुर्माना देना होगा और तय समय सीमा में विवादों का निपटारा होगा। खेत और फसल दोनों का मालिक हर स्थिति में किसान ही होगा।

कृषि क्षेत्र में शोध व विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा मिलेगा। अनुबंधित किसानों को सभी प्रकार के आधुनिक कृषि उपकरण मिल पायेंगे। उत्पाद बेचने के लिए मंडियों या व्यापारियों के चक्कर नहीं लगाने होंगे। खेत में ही उपज की गुणवत्ता की जाँच, ग्रेडिंग, बैगिंग व परिवहन जैसी सुविधायें उपलब्ध होंगी। किसान को नियमित और समय पर भुगतान मिल सकेगा।

तीसरे कानून के अनुसार अनाज, तिलहन, दाल, आलू व प्याज जैसी जरूरी चीजों को आवश्यक वस्तुओं की सूची से हटाने की वजह से किसान हमेशा इन फसलों को उगाने के लिये प्रतिबद्ध नहीं होंगे। कोल्ड स्टोरेज व खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में निवेश बढ़ेगा, क्योंकि वे अपनी क्षमता के अनुरूप उत्पादों का भण्डारण कर सकेंगे। इससे किसानों की फसल बर्बाद नहीं होगी। कृषि क्षेत्र में निजी व प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ावा मिलेगा। कोल्ड स्टोर व खाद्यान्न आपूर्ति श्रृंखला के आधुनिकीकरण में निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा। किसानों की फसल बर्बाद नहीं होगी ओर उन्हें समुचित कीमत मिलेगी। जब सब्जियों की कीमत दोगुनी हो जायेगी या खराब न होने वाले अनाज का मूल्य 50 प्रतिशत बढ़ जायेगा तो सरकार भंडारण की सीमा तय कर देगी। इस प्रकार किसान व खरीददार दोनों को फायदा होगा।

औद्योगिक जगत का हौवा दिखाकर नए कानूनों का विरोध सच्चाई की अनदेखी करना है। यहाँ यह समझने की जरूरत है कि आढ़ती भी व्यापारी ही है फिर औद्योगिक जगत के रूप में निजी क्षेत्र का डर दिखाकर एक दूसरे किस्म के व्यापारियों की ढाल बनाने का क्या मतलब है। अगर किसान आढ़तियों पर भरोसा कर सकते है तो औद्योगिक जगत पर भी एक बार विश्वास करके आजमाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनुबन्धात्मक खेती के फायदेमंद नतीजों की भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए।

निष्कर्ष-

भारत में कृषि क्षेत्र की उत्पादकता दुनिया की तमाम बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के मुकाबले कही पीछे हैं। अधिकांश किसानों की गरीबी का यह सबसे बड़ा कारण है यह उत्पादकता तब तक नहीं बढ़ने वाली है जब तक कृषि के आधुनिकीकरण की तरफ कदम नहीं बढ़ाये जायेंगे। यह काम कोई भी एकतरफा नहीं कर सकता। इसमें निजी क्षेत्रों का सहयोग भी जरूरी है। अतः किसानों को अपनी कामयाबी हासिल करने के लिए सकारात्मक रूप से कदम बढ़ाकर इसे आजमाना चाहिए।

❖❖

रबी फसलों में रासायनिक खरपतवार प्रबन्धन

आशीष कुमार श्रीवास्तव एवं खलील खान

चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

पत्राचारकर्ता : : khankhalil64@gmailcoim

प्रस्तावना

हरित क्रान्ति के फलस्वरूप प्रदेश के अन्न उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है किन्तु दूसरी तरफ असमय प्राकृतिक आपदाओं के कारण उत्पादन में भी गिरावट आयी है। वर्तमान समय में देश के कुल अन्न एवं सब्जी उत्पादन में से 1/5 भाग तथा दुग्ध एवं फल उत्पादन में 1/4 भाग की हिस्सेदारी प्रदेश की है। प्राकृतिक सम्पदाओं तथा मानव शक्ति से धनी होने के पश्चात् उत्तर प्रदेश देश के अन्य प्रदेशों की तुलना में कृषि तकनीक के क्षेत्र में काफी पिछड़ा हुआ है। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2050 तक विश्व की जनसंख्या 1100 करोड़ के आस-पास हो जायेगी जो कि वर्ष 1990 की तुलना में दो गुना होगी साथ ही साथ प्रति व्यक्ति भूमि उपलब्धता 0.3 हे0 से घटकर 0.13 हे0 हो जायेगी। जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव को देखते हुए तथा भावी अन्न उत्पादन की माँग को दृष्टिगत रखते हुए विगत कई वर्षों से उच्च उत्पादकता प्रजाति वाली फसलों का उत्पादन ज्यादातर भूमि पर किया जाने लगा है। एक तरफ तो उत्पादन में वृद्धि हुई है वहीं दूसरी तरफ प्राकृतिक आपदाओं (जैसे असमय सूखा, वर्षा एवं ओलावृष्टि, पर्यावरण असन्तुलन) एवं कृषि के कुप्रबन्ध (जैसे खरपतवार, कीड़ों व बीमारियों) के कारण अन्न उत्पादन में काफी कमी आई है। जिसमें से सर्वाधिक नुकसान फसलों को खरपतवार के माध्यम से होता है, जोकि लगभग 33 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत तक है।

कृषि के इतिहास में सर्वप्रथम रसायन का उपयोग 1896 में बोर्डो मिश्रण के रूप में किया गया था। भारत में सर्वप्रथम रसायन का प्रयोग 1937 में पंजाब में हुआ जब सोडियम आर्सेनेट का उपयोग जंगली कुसुम (कारथेमस आक्जीकैन्था) के नियंत्रण के लिए किया गया था। 2,4-डी का उपयोग शाकनाशी के रूप में यू0एस0ए0 में मार्थ तथा मिचेल (1944) के द्वारा सर्वप्रथम किया गया। भारत में सर्वप्रथम 2,4-डी का उपयोग गेहूँ में 1950 में किया गया था। भारत में खरपतवार नियंत्रण में रसायन की अवधारणा तब आई जब चाय बागान में खरपतवार नियंत्रण के लिए पैराक्वाट का प्रयोग शुरू हुआ। शाकनाशी का सर्वाधिक उपयोग चाय तथा कॉफी में होता है, क्योंकि खरवतवार नियंत्रण का यही एक उचित उपाय है।

शाकनाशी का वर्गीकरण

1. रासायनिक संरचना के आधार पर

अ. अकार्बनिक (Inorganic):-आर्सेनिक अम्ल, सल्फ्यूरिक अम्ल, सोडियम आर्सेनेट, सोडियम क्लोरेट, बोरैक्स, कॉपर सल्फेट, कॉपर नाइट्रेट इत्यादि।

ब. कार्बनिक (Organic):- डैलापॉन, प्रोपेनिल, पैराक्वाट, डाइक्वाट, ब्यूटाक्लोर, बेसालिन, 2,4-डी, एट्राजीन, सीमाजीन, आइसोप्रोट्यूरान इत्यादि।

2. वर्णात्मकता के आधार पर (On the basis of selectivity)

अ. वर्णात्मक शाकनाशी (Selective Herbicide):- ऐसे शाकनाशीय जो कुछ विशेष प्रकार के वनस्पतियों पर ही प्रभाव दिखाते है और टारगेट खरपतवार को मार देता है, उदाहरण-सीमाजीन, एट्राजीन, 2,4-डी, ब्यूटाक्लोर, फ्लूक्लोरालीन, आइसोप्रोट्यूरान इत्यादि।

ब. अवर्णात्मक शाकनाशी (Non Selective Herbicide):- ऐसे खरपतवारनाशीय जो किसी भी वनस्पति के सम्पर्क में आने पर उसको नुकसान पहुँचाते है। यह फसल और खरपतवार में अन्तर नहीं करता है, उदाहरण - डाइक्वाट तथा पैराक्वाट।

3. शाकनाशी के स्थानान्तरण के आधार पर

अ. सिस्टेमिक शाकनाशी (Systemic Herbicide):- ऐसा रसायन खरपतवार के जाइलम या फ्लोएम के माध्यम से प्रवेश कर खरपतवार के पूरे सिस्टम को प्रभावित करता है। ज्यादातर सिस्टेमिक शाकनाशी एक निश्चित मात्रा पर वर्णात्मक होते हैं जैसे- प्रोपेनिल, 2,4-डी, एट्राजीन, सीमाजीन इत्यादि।

ब. संस्पर्शी शाकनाशी (Non Selective Herbicide):- ऐसे शाकनाशी जो फसल और खरपतवार के सम्पर्क में आते ही पौधे के उस भाग को मार देता है, जैसे- डाइक्वाट और पैराक्वाट।

छिड़काव के समय के आधार पर

अ. बुवाई के पूर्व छिड़काव- इसे खेत में फसल बोने के पूर्व डाला जाता है, जैसे- फ्लूक्लोरालीन तथा एलाक्लोर इत्यादि।

ब. बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व छिड़ाव- खरपतवार को मिट्टी से बाहर निकलने के पूर्व लेकिन फसल के बाहर निकलने के बाद किया जाता है। ऐसी स्थिति में सिर्फ वर्णात्मक शाकनाशी का प्रयोग किया जाता है।

स. अंकुरण पश्चात् छिड़काव- खरपतवार के मिट्टी से बाहर निकलने के पश्चात् ही (फसल भी बाहर निकल जाती है) इसका प्रयोग होता है। जैसे- 2,4-डी, प्रोपेनिल, डाईक्वाट, पैराक्वाट इत्यादि।

5. छिड़काव करने की विधि के आधार पर

अ. पर्णीय छिड़ाकाव- यह संस्पर्शी होता है। इसका छिड़काव खरपतवार के पौधों पर किया जाता है।

ब- मृदा छिड़ाकाव - यह वर्णात्मक या अवर्णात्मक होता है।

स- जलीय छिड़ाकाव- उदाहरण- कॉपर सल्फेट, 2,4-डी इत्यादि। कृषि की दृष्टि से भारतीय कृषि को मुख्यतः तीन मौसम खरीफ, रबी एवं जायद में बाँटा गया है। जिनमें उगाई जाने वाली कृषि फसलें भी अलग-अलग हैं।

सारणी-1. खरीफ मौसम की प्रमुख फसलें एवं उनकी प्रकृति

क्रमांक	फसल का नाम	प्रकृति
1.	धान	अन्न
2.	मक्का	अन्न
3.	बाजरा	अन्न
4.	ज्वार	अन्न
5.	मूँग	दलहन
6.	उर्द	दलहन
7.	अरहर	दलहन
8.	लोबिया	दलहन
9.	तिल	तिलहन
10.	सोयाबीन	तिलहन
11.	मूँगफली	तिलहन
12.	सूरजमुखी	तिलहन

सारणी- 2. रबी मौसम की प्रमुख फसलें एवं उनकी प्रकृति

क्रमांक	फसल का नाम	प्रकृति
1.	गेहूँ	अन्न
2.	जौ	अन्न
3.	जई	अन्न
4.	चना	दलहन
5.	मटर	दलहन
6.	मसूर	दलहन
7.	सरसों	तिलहन
8.	अलसी	तिलहन
9.	अरण्ड	तिलहन
10.	कुसुम	तिलहन

सारणी-3. प्रमुख फसलों की क्रान्तिक अवस्था एवं उत्पादन में होने वाली हानियाँ

क्र.सं.	फसल का नाम	क्रान्तिक अवस्था (दिन बुवाई के पश्चात)	उत्पादन में गिरावट (%)
1.	धान (सीधी बुवाई)	15-45	15-90
2	धान (रोपाई द्वारा)	30-45	15-40
3	गेहूँ	30-45	20-40
4	मक्का	15-45	40-60
5	ज्वार	30-45	15-40
6	बाजरा	15-60	15-60
7	अरहर	15-30	20-40
8	मूँग	15-30	25-50
9	उर्द	30-60	30-50
10	लोबिया	30-60	15-25
11	चना	30-60	15-25
12	मटर	30-45	20-30
13	मसूर	30-60	20-30
14	सोयाबीन	30-60	40-60

15	मूँगफली	30-50	40-50	22	गन्ना	30-120	30-60
16	सूरजमुखी	30-45	30-50	23	आलू	20-40	40-50
17	अरण्डी	30-60	30-35	24	कपास	15-60	50-80
18	कुसुम	15-15	35-60	25	जूट	30-45	50-60
19	तिल	15-45	15-40	26	पत्तागोभी	30-45	50-60
20	लाही, तोरिया			27	गोभी	30-45	50-60
				28	भिण्डी	30-45	40-50
	एवं सरसों	15-40	30-40	29	टमाटर	15-30	40-70
21	अलसी	20-45	20-30	30	प्याज	30-45	60-70

सारणी-4: रबी की फसल के प्रमुख खरपतवार एवं उनकी प्रकृति

क्र.सं.	हिन्दी नाम/स्थानीय नाम/ लोकल नाम	वैज्ञानिक नाम	प्रकृति
1.	जंगली जई	एवना फेचुआ	एक वर्षीय
2.	महकुआ	एजिरेटम कीनीज्वाईडस	,,
3.	कृष्ण नील	एनागेलिस आरवेन्सिस	,,
4.	जवासा	एलहेगी केमुलोरम	,,
5.	सत्यानाशी	आरजीमोन मैक्सीकाना	,,
6.	प्याजी	एसफोडिलस टेनिफोलियम	,,
7.	जंगली मेंहदी	अमेनिया वेकोईफेरा	,,
8.	हिरनखुरी	कनवालवलिस आरवेन्सिम	बहुवर्षीय
9.	भाँग	केनाबिस सेटाईवा	एक वर्षीय
10.	तरातेज	कोरोनोफस डिडीमस	,,
11.	कासनी	चिकोरियम इन्टीबस	,,
12.	बथुआ	चिनोपोडियम एलबल	,,
13.	खरबथुआ	चिनोपोडियम म्यूरेल	,,
14.	जंगली गाजर	डेकस करोटा	द्विवर्षीय
15.	तिपतिआ	डिसमोडियम ट्राईफोलियस	एक वर्षीय
16.	जंगली सोया	फ्यूमेरिया परवीफ्लोरा	,,
17.	जंगली गोभी	ल्यूनिआ इसप्लेनीफोलिया	द्विवर्षीय
18.	खेसरी	लेथाईरस सेटाईवस	एक वर्षीय
19.	मटरी	लेथाईरस एफाका	,,
20.	सफेद सैंजी	मेलीलोटस अल्बा	,,
21.	पीली सैंजी	मेलीलोटस इण्डिका	,,
22.	जंगली तम्बाकू	निकोटिआना प्लमडेजीनीफोलिया	,,
23.	वनतुलसी	ओसियम सेन्कटम	,,
24.	बैसुरी	प्लूचिया लेन्सियोलाटा	बहु वर्षीय
25.	गेहूँसा/गेहूँ का मामा	फ्लेरिस माईनर	एक वर्षीय
26.	सठगठिया	स्परजुला आरवेन्सिस	,,
27.	मुनमुना	बीसिया हिरूस्टा	,,
28.	असगन्ध	बीथेनिया सोमनीफेरा	,,

सारणी-5ः विभिन्न फसलों में पाये जाने वाले प्रमुख खरपतवार

क्र.सं.	फसल	खरपतवार
1.	गेहूँ	बथुआ (चिनोपोडियम एल्बम), हिरनखुरी (कानवोल्वुलस आरवेन्सिस), कृष्णनील (एनागैलिस आरवेन्सिस), अंकरी (विसिया सेटाइवा), गेहूँ का मामा (फैलारिस माइनर), जंगली जई (अवेना फैटुआ) आदि।
2.	रबी की दलहनी एवं तिलहनी फसलें	प्याजी (एस्फोडिलस टेन्यूफोलियस), पोहली (कार्थेमस आक्सीकेन्था), जंगली मटर (लेथाइरस सेटाइवा), बनसोया (फ्यमेरियो पैरवीफ्लोरा), जंगली गोभी (लाउनिया प्रजाति), बथुआ तथा हिरनखुरी आदि।

खरपतवारों की रोकथाम (कब और कैसे):

फसलों के पौधे अपनी प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवारों से मुकाबला नहीं कर पाते हैं अतः प्रारम्भिक अवस्था में फसल के खरपतवार की मुक्त रखना अति आवश्यक है जिसमें रासायनिक खरपतवार नियंत्रण शीघ्र खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

प्रमुख खरपतवारः- सामान्यतः देश में खेती को तीन मौसमों में खरीफ, रबी एवं जायद में बाँटा गया है जिसमें से मुख्य रूप से अन्न, दलहन, तिलहन का उत्पादन मुख्यतः खरीफ एवं रबी के मौसम में किया जाता है। यहाँ रबी की फसलों में पाये जाने वाले खरपतवार का विवरण दिया जा रहा है।

सारणी-6ः रबी की प्रमुख फसलें एवं उनके खरपतवार

फसल	खरपतवार का सामान्य नाम	रासायनिक नाम
गेहूँ	गेहुसा (गेहूँ का मामा)	फैलेरिस माइनर
	जंगली जई	एवेना फटुआ
	कृष्णनील	एनागैलिस आरबेन्सिस
	बथुआ	चिनोपोडियमएल्बम
जौ	जंगली जई	एवेना फटुआ
	सत्यानासी	आर्जीमोन मेक्सिकाना
जई	जंगली जई	एवेना फटुआ
	गेहुँसा	फैलेरिस माइनर
	सत्यानासी	अर्जीमोन मेक्सिकाना
चना	बथुआ	चिनोपोडियम एल्बम
	कृष्णनील	एनागैलिस आरवेन्सिस
	सफेद सैंजी	मेलीलोटस एल्बा
मटर	हिरनखुरी	कनवोलवुलस आरवेन्सिस
	बथुआ	चिनोपोडियम एल्बम
मसूर	कृष्णनील	एनागैलिस आरवेन्सिस
	तिनपतिया	डेसमोडियम ट्राइफोलियम
सरसों	ब्रूमरेप	ओरोवैंकी स्पीसीज
	कृष्णनील	एनागैलिस आरवेन्सिस
	सत्यानाशी	आर्जीमोन मेक्सिकाना
अलसी	सत्यानाशी बथुआ	आर्जीमोन मेक्सिकाना
	चिनोपोडियम	एल्बम
अरण्ड (बेंजवत)	तिनपतिया	डेसमोडियम ट्राइफोलियम
	दूबघास	साइनोडॉन डेक्टाइलोन
	महकुआ	एजीरेटम कोनीजोइड्स
कुसुम	कृष्णनील	एनागैलिस आरवेन्सिस
	बथुआ	चिनोपोडियम एल्बम

सारणी-7ः रबी की प्रमुख फसलों के खरपतवार के रासायनिक प्रयोग

फसल का नाम	रासायन का नाम	मात्रा किग्रा0/है0	प्रयोग का समय
गेहूँ	सल्फोसल्फ्यूरॉन 2,4-डी,	33 ग्राम	बुआई के 30-35 दिन बाद
	आइसोप्रोट्यूरॉन	0.5	बुआई के 30-35 दिन
	पेण्डिमेथलीन	1.0	बाद खरपतवार उगने से पहले
		1.0-1.5	
जौ	2,4-डी	0.5	बुआई के 30-35 दिन बाद
जई	पेण्डिमेथालीन	1.0-1.5 0.5	खरपतवार उगने से पहले
	2,4-डी		बुआई के 30-35 दिन बाद
चना	बेसालिन	0.75	बुआई के पहले खरपतवार
	पेन्डिमेथलीन	1.0	उगने के पहले/बुवाई के बाद
मटर	बेसालिन	0.75	बुआई के पहले खरपतवार
	पेन्डिमेथलीन	1.0	उगने के पहले/बुवाई के बाद
मसूर	पेन्डिमेथालीन	1.0	खरपतवार उगने से पहले/बुवाई के बाद
	क्लोडिनोफॉप	0.06	खरपतवार उगने के बाद
सरसों	बेसालिन	1.0	बुआई से पहले
	आइसोप्रोट्यूरॉन	1.5	खरपतवार उगने से पहले
	पेन्डिमेथलीन	1.5	खरपतवार उगने से पहले /बुवाई के बाद
अलसी	पेन्डिमेथलीन	1.5	खरपतवार उगने से पहले
कुसुम	बेसालिन	1.0	बुआई से पहले
	पेन्डिमेथलीन	1.5	खरपतवार उगने से पहले/बुवाई के बाद
	क्लोडिनोफाप	0.06	खरपतवार उगने के बाद

सारणी-8ः रबी फसलों में खरपतवार नियंत्रण

क्र. सं0	फसल का नाम	खरपतवारनाशी का नाम एवं मात्रा
1.	गेहूँ	● सल्फोसल्फ्यूरान / 33 ग्रा0/है0 / 0.5 किग्रा 2,4 डी बुवाई के 30-35 दिन बाद ● आक्साडायाजोन / 0.5-0.75 किग्रा0/है0 4-6 दिन बुवाई के बाद ● थायोवेनकार्ब / 1.5-3.0 किग्रा0/है0 6-10 दिन बुवाई के बाद
2.	जौ	● गेहूँ के समान =
3.	चना एवं मटर	● पैंडीमिथलीन / 3.3 ली0/है0 3-6 दिन बुवाई के बाद / एक निराई 30-35 दिन पर
4.	रबी मक्का	● एट्राजिन / 1.5-2.0 किग्रा0/है0 2-3 दिन बुवाई के बाद ● पैंडीमिथलीन / 3.3 ली0/है0 3-6 दिन बुवाई के बाद
5.	सरसों	● पैंडीमिथलीन / 3.3 ली0/है0 3-6 दिन बुवाई के बाद ● फ्लूक्लोरालिन / 0.5-1.0 किग्रा0/है0 प्रीप्लाट
6.	आलू	● 30-40 दिन पर मिट्टी चढ़ाना = पैंडीमिथलीन / 3.3 ली0/है0 3-6 दिन बुवाई के बाद ● फ्लूक्लोरालिन / 0.5-1.0 किग्रा0/है0 प्रीप्लाट

सारणी-9: सहफसली खेती में रसायन नियंत्रण

फसल	प्रमुख खरपतवार	खरपतवारनाशी	मात्रा	प्रयोग का समय
ज्वार / अरहर	पथरचटा, लहसुआ, कनकौआ, मकरा, धुनिया आदि से	पेन्डीमेथलीन (30%) एट्राजीन (50%)	3.3 ली./हे0 1.0 ली./हे0	बुवाई के बाद जमाव पूर्व तदैव
अरहर/उड़द	पथरचटा, मोथा, धनिया, लहसुआ, कनकौआ, डंबरा, मकरा	पेन्डीमेथलीन (30%) पूर्व	3.3 ली./हे0	बुवाई के बाद जमाव से
उर्द / तिल	पथरचटा, मोथा, धनिया, लहसुआ, कनकौआ, डंबरा, मकरा	पेन्डीमेथलीन (30%)	3.3 ली./हे0	बुवाई के बाद जमाव से पूर्व
मूँगफली /	पथरचटा, मोथा, धनिया, अरहर लहसुआ, कनकौआ, डंबरा, मकरा	पेन्डीमेथलीन (30%)	3.3 ली./हे0	बुवाई के बाद जमाव से पूर्व
गेहूँ / सरसों	गेहुंसा, बथुआ, सैजी, कृष्णनील, तारातेज, हिरनखुरी, सतगठिया आदि।	आइसोप्रोटयूरान (75%)	1 किग्रा./हे0	बुवाई के बाद एवं जमाव से पूर्व
आलू/राई/ अलसी	गेहुंसा, बथुआ, सैजी, कृष्णनील, तारातेज, हिरनखुरी, सतगठिया आदि।	आइसोप्रोटयूरान (75%) से पूर्व	1 किग्रा./हे0	बुवाई के बाद एवं जमाव
चना / अलसी	गेहुंसा, बथुआ, सैजी, कृष्णनील, तारातेज, हिरनखुरी, सतगठिया आदि।	पेन्डीमेथलीन (30%)	3.3 ली./हे0	बुवाई के बाद एवं जमाव से पूर्व
मटर / सरसों	गेहुंसा, बथुआ, सैजी, कृष्णनील, तारातेज, हिरनखुरी, सतगठिया आदि।	पेन्डीमेथलीन (30%)	3.3 ली./हे0	बुवाई के बाद एवं जमाव से पूर्व
मसूर / अलसी	गेहुंसा, बथुआ, सैजी, कृष्णनील, तारातेज, हिरनखुरी, सतगठिया आदि।	पेन्डीमेथलीन (30%)	3.3 ली./हे0	बुवाई के बाद एवं जमाव से पूर्व

निष्कर्ष-भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ बड़े पैमाने पर फसलें उगायी जाती हैं परन्तु फसलों को खरपतवार बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। जिससे फसल की उपज प्रभावित हो जाती है। यदि उपरोक्त लेख में बताये गये विधियों द्वारा खरपतवारों का प्रबन्धन किया जाय तो किसान अपनी उपज को प्रभावित होने से बचा सकते हैं और अपनी आय को बढ़ा सकते हैं।

सन्दर्भ-*Indian Journal of Weed Science., 2016-18.*

❖❖

प्रमुख औषधीय व मसाला फसलों की उपयोगिता

अर्चित गुप्ता[1] एवं हेमलता पंत[2]

[1]श्री सांई कालेज ऑफ फार्मेसी हडिया, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

[2]जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश-211002

पत्राचारकर्ता : **Email id – architgupta909090@gmail.com**

प्रस्तावना

भारत वर्ष अपनी सभ्यता, संस्कृति तथा अमूल्य प्राकृतिक धरोहर के कारण विश्व में अग्रणी है। प्राकृतिक धरोहर में भारत की बहुमूल्य वनस्पतियाँ महत्वपूर्ण रही है। भारत वर्ष की आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति विश्व के लिए एक अनूठी देन है। चरक, धनवन्तरी तथा सुश्रुत जैसे महर्षियों द्वारा आयुर्वेद के क्षेत्र में किये गये कार्य सर्वमान्य व सर्वविदित हैं। भारत औषधीय, सुगंधीय एवं मसाला फसलों में अपना विश्व में अग्रणी स्थान रखता हैं। भारतीय चिकित्सा में इन सब का उपयोग आयुर्वेद, होम्योपैथ, यूनानी, सिद्ध व तिब्बती औषधियों में सदियों से होता आ रहा हैं। दिसम्बर 2019 से पूरा विश्व 'कोविड-19' बीमारी से जूझ रहा है। हमारे देश पायी जाने वाली विभिन्न औषधीय व मसाला फसलों में विषाणु, जीवाणु, फफूँद व अन्य हानिकारक सूक्ष्म जीवों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता होती है तथा साथ ही साथ यह हमारे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को भी मजबूत करती है। जिससे विभिन्न बीमारियों से बच सकें। जिससे हमारा विभिन्न बीमारियों से बचाव होता है। इसी को ध्यान में रखते हुये हम कुछ औषधीय व मसाला फसलों के बारे में संक्षिप्त जानकारी अपने इस लेख में दे रहे हैं जो कोरोना विषाणु के साथ अन्य हानिकारक सूक्ष्म जीवों से भी हमारे स्वास्थ्य को सुरक्षित रख सकें।

1. काली मिर्च

स्थानीय नाम- **काली मिर्च**

वनस्पतिक नाम- **पाइपर नाइग्रम**

औषधीय गुण एवं उपयोगः-

काली मिर्च में कई तरह के औषधीय गुण पाये जाते है जिसका उपयोग करने से कई तरह के रोगो से बचा जा सकता है। इसमें मुख्य रूप से एंटी-फ्लैटुलेंस, ड्यूरेटिक, एंटी इंफ्लेमेटरी, पाचन, दर्द निरोधक गुण पाये जाते है। ये सभी गुण कई समस्याओ के इलाज में मदद करती है। इसके सेवन करने से सर्दी में होने वाली बीमारियाँ जैसे खांसी, जुकाम में काफी राहत मिलती है और बाल झड़ने की समस्या से भी मुक्ति मिलती है। इसमें एंटी- डिप्रसेट गुण पाये जाते है जो लोगो को डिप्रेशन से दूर करने में मदद करता है।

इसमें विटमिन सी, ए, कैरोटीन्स और अन्य एंटी आक्सीडेंट होता है, जो महिलाओं में होने वाला ब्रेस्ट कैंसर के खतरे को कम करता है। अगर आप काली मिर्च के पाउडर को शहद में मिलाकर दिन में एक बार इस्तेमाल करते है तो आपको कफ, सर्दी जैसे समस्या नही होगी और आपकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ेगी।

2. गिलोय

स्थानीय नाम- **गिलोय**

वानस्पतिक नाम- **टीनोस्पोरा-कार्डीफोलिया**

औषधीय गुण एवं उपयोगः -

यह एक त्रिदोष विनाशक औषधि है। जिसके सेवन करने से कफ, पित्त और वात संबंधी सभी परेशानियाँ दूर होती है। इसमें काफी मात्रा में एंटी ऑक्सीडेंट तत्व पाये जाते है। इसमें मलेरिया और दूसरे बुखार से बचाव करने का भी गुण पाया जाता है। यह हमारे प्रतिरोधक क्षमता को भी बढाता है। गिलोय के रस में 1.1 ग्राम शहद व सेंधा नमक मिलाकर आँखो में काजल की तरह लगाने से काला तथा सफेद मोतियाबिंद रोग की समस्या दूर होती हैं। इसके रस के साथ गुण का सेवन करने से कब्ज की समस्या में राहत मिलती है। इसके काढ़े में गुड़ डालकर सुबह शाम पीने से बवासीर की बीमारी ठीक होती हैं।

3. आँवला

स्थानीय नाम- **आँवला या आमलकी पंचरसा, अमृतफल**

वानस्पतिक नाम- **फिलैंथस एँबेलिका**

औषधीय गुण एवं उपयोगः-

यह एक त्रिदोष नाशक औषधि है। जो वात, पित्त, कफ सभी समस्याओं से छुटकारा दिलाता है। इसमें विटामिन-सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। जो बाल झड़ने और सफेद होने से रोकता है। इसके सेवन से रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ता है जो विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है। इसमें मौजूद एंटी-ऑक्सीडेंट, ऑटिडिएटिव तनाव से आँखो की रक्षा रेटिना करते है। जिससे मोतियाबिंद का खतरा भी कम हो जाता है। इसके प्रयोग करने से श्वसन संबंधी रोगो से छुटकारा मिलता है। इसमें कैल्शियम अच्छी मात्रा में पाया जाता है जो हमारे हड्डियों को मजबूत बनाता है।

4- अदरक

स्थानीय नाम- **सौंठ, अदरक**

वानस्पतिक नाम**- जिंजिबर ऑफिसिनेल**

औषधीय गुण एवं उपयोगः-

यह एक ऐसी औषधि है जिसमें एंटी इनफ्लमेटरी, एंटी बैक्टीरियल और एंटी ऑक्सीडेंट के गुण पाये जाते है, जो सिर दर्द, सर्दी, जुकाम और अपाचन की समस्या से राहत दिलाते है। इसमें विभिन्न प्रकार के विटामिन प्रचुर मात्रा में पाये जाते है, जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करते है। इसके सेवन करने से पेट की चर्बी कम होती है। इसके जूस में एंटी- ऑक्सीडेंट होने के कारण इनमें खून को साफ करने का एक खास गुण होता है। अदरक में कैंसर जैसी बीमारी से शरीर को बचाए रखने का खास गुण पाया जाता है, जो कैंसर पैदा करने वाले सेल्स को खत्म करता है। इसके पास सभी प्रकार के दर्द से राहत दिलाने का एक खास क्षमता होती है। इसके रस को अगर नियमित उपयोग किया जाय, तो बाल घने और चमकदार हो जाते हैं।

5. लेमन ग्रास (नींबू घास)

स्थानीय नाम- **नीबू घास, मालाबार घास, कोचीन घास**

वानस्पतिक नाम- **सिम्बेपोगोन- फ्लक्सुओएस**

औषधीय गुण एवं उपयोगः-

यह एक प्रकार का औषधि है जिसमें कई प्रकार के औषधीय गुण पाये जाते है। इस औषधि का उपयोग कई सारे रोगो को ठीक करने के लिए किया जाता है। सर्दी, खांसी व बुखार जैसे रोगो से छुटकारा पाने के लिए इसके तेल का उपयोग किया जाता है। इसके इस्तेमाल करने से टाइप2 डायबिटीज, मोटापा, कैंसर, पेट संबंधी बीमारियाँ, नींद न आने की बीमारी (इनसोम्निया) और साँस संबंधी बीमारियों से दूर रहने में मदद मिलती है। यह घास एंटी- ऑक्सीडेंट, एंटी इंफ्लेमेंटरी, एंट-सेप्टिक और विटमिन-सी से भरपूर है जो रोगो से लड़ने की क्षमता पैदा करती है। इस घास में सिट्राल नामक तत्व पाया जाता है जो कैंसर सेल्स के शुरूआती अवस्था को रोकने में मदद करता हैं।

6. लहसुन

स्थानीय नाम- **लहुसन, रसहुन, लशन**

वानस्पतिक नाम- **एलियम- सैटिवुम एल**

औषधीय गुण एवं उपयोगः-

लहसुन को वर्षों से पाक और औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है। इसको एंटीसेप्टिक के रूप में प्रयोग किया जाता है, जो घावों को भरने में मदद करता है। इसमें एलिसिन नामक तत्व पाया जाता है, जो ह्रदय रोग हाई कोलेस्ट्राल, सर्दी-जुकाम और फ्लू जैसे समस्याओं से छुटकारा करने में मदद करता है। लहसुन के पास रूमेटोइड नामक तत्व पाया जाता है, जो गठिया वाले लोगो के दर्द और अन्य लक्षणो को कम करने में अत्यंत प्रभावी होता है। इसमें निहित विटमिन सी, बी6 और सेलेनियम और मैग्नीज जैसे खनिज पाये जाते हैं, जो हमारे प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाने मदद करते है। इसके अलावा इसमें एंटी- फंगल गुण पाये जाते है जो कवक संक्रमण से लड़ने में सहायता करते है।

7. तुलसी

स्थानीय नाम- **तुलसी**

वानस्पतिक नाम- **ऑसीमम सैन्कटम**

औषधीय गुण एवं उपयोगः-

यह एक द्विबीजपत्री तथा शाकीय औषधीय पौधा है जो झाड़ी के रूप में उगता है और 2 से 3 फुट ऊँचा होता हैं। यह पौधा निम्न प्रजातियों में पाया जाता है, जैसे- काली तुलसी (ऑक्सीमम अमेरिकन), मरूआ तुलसी (ऑसीमम ग्रेटिसिकम) आदि। औषधीय उपयोग की दृष्टि से तुलसी का उपयोग हजारो वर्ष से विभिन्न प्रकार के रोगो के इलाज में किया जाता है, जो बड़ी से बड़ी जटिल बीमारियों को दूर करने और उनके रोकथाम करने में बहुत सहायक होते है। ह्रदय रोग हो अथवा सर्दी जुकाम हो, इसका इस्तेमाल हमारे भारत में सदियों से होता चला आ रहा है। जो पवित्र तुलसी के भाग होते है उनका प्रयोग एडाप्टोजन के रूप में किया जाता है। यह वो प्राकृतिक पदार्थ है जो शरीर को तनाव सहन करने के अनुकूल बनाता

है। तुलसी का इस्तेमाल हम सब अपने प्रतिरक्षा क्षमता को बढ़ाने के लिए करते है, जो विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया और वायरस के खिलाफ लड़ने के लिए हमे शक्ति प्रदान करते है। तुलसी हमारे शरीर में उपस्थित अशुद्धियों को बाहर करती है और पी.एच. स्तर को संभालने में मदद करती है।

पवित्र तुलसी के पत्तों में एंटी- इंटी इंफ्लेमेंटरी और एंटी-ऑक्सीडेंट गुण पाए जाते है, जो गठिया से ग्रसित लोगो को राहत पहुँचाती है।

वन तुलसी (राम तुलसी) होती है अगर हम सब उनके पत्ते के रस को नाक द्वारा किसी व्यक्ति को देते है तो उस व्यक्ति को साइनस में बहुत फायदा होता है, और नाक से रक्तस्राव को रोकने में तुलसी का रस मददगार होती है।

यदि हम सब इसका प्रयोग रस (अर्क) के रूप में करते है, तो इसकी कोई भी सीमा नही है, आप चाहे जितना इसके रस का इस्तेमाल करें।

8. हल्दी

वानस्पतिक नामः- **करक्यूमा लोंगा**

औषधीय गुण एवं उपयोगः-

हल्दी को अंग्रेजी में टर्मरिक कहते है, जो एक भारतीय वनस्पति है यह अदरक की प्रजति का 5-6 फुट तक बढ़ने वाला पौधा है जिसके जड़ में हमें हल्दी मिलती है। इसको आयुर्वेद को औषधि ग्रंथो में एक चमत्कारिक द्रव्य के रूप में मान्यता प्राप्त है।

इसमें उड़नशील तेल 5.8%, प्रोटीन 6.3%, द्रव्य 5.1% और 68.4%, के अतिरिक्त करक्यूमिन नामक पीत रंजक द्रव्य और विटामिन ए पाये जाते है जो हम सब को कई रोगो की समस्याओ जैसे पाचन तंत्र की समस्या गठिया, रक्त-प्रवाह, कैंसर आदि से लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं।

एक शोध से यह पता चला है कि इसमें एक लिपोपॉली-सैचुराइड नामक तत्व पाया जाता है जो हमें विभिन्न प्रकार के जीवाणु से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है और हमारे प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत बनाता है। इसके उपयोग करने से हमारे शरीर में कोलेस्ट्रॉल की समस्या से छुटकारा मिलता है इसको आयुर्वेद के ग्रंथो में बेहद ही महत्वपूर्ण माना गया है हल्दी एक एंटीसेप्टिक की तरह कार्य करता है। कही कटा अथवा रक्तस्राव हो रहा हो तो हल्दी के प्रयोग से घाव जल्दी भर जाता है और आराम देता है।

निष्कर्ष-उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि आयुर्वेद चिकित्सा वर्ष से जन्मी है। आज कोरोना जैसी महामारी ने पूरी दुनिया में आर्थिक व स्वास्थ्य का संकट को जन्म दिया है। ऐसे में स्वास्थ्य संकट को दूर करने में एवं इस बीमारी से निपटने में आयुर्वेद ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। उपरोक्त लेख में दी गयी औषधीय मसालों को हम यदि नियमित रूप से अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनाते हैं तो हमारी रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी साथ ही कारोना एवं अन्य कई खतरनाक बीमारियों से स्वयं लड़ सकते हैं और स्वयं को स्वस्थ्य रख सकते हैं।

❖❖

विपरीत मौसम में फलोद्यानों का उचित प्रबन्धन

डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी

उद्यान विज्ञान विभाग

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर-उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ता : drvktripathicsa@gmail.com

प्रस्तावना

सामान्यतः विभिन्न फलों के नये बगीचे जुलाई-अगस्त माह में सफलतापूर्वक लगाये जाते हैं, जो मौसम की विपरीत परिस्थितियों जैसे सर्दी एवं गर्मी से अतिशीघ्र प्रभावित हो जाते हैं। अतः इन विपरीत परिस्थितियों में इनको बचाना अतिआवश्यक हो जाता है। सर्दियों (दिसम्बर-जनवरी) तथा गर्मियों (अप्रैल से जून) में कम उम्र एवं आकार में भी छोटे पौधे विपरीत परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक सहिष्णु रहते हैं। जिनके वातावरण में तापक्रम के कम या अधिक होने पर शीघ्र मृत हो जाने की संभावना अधिक बनी रहती है। अतःइन नवरोपित फल वृक्षों को पाला, गर्म ठंडी हवाओं, कम तथा अधिक तापक्रम आदि कारकों से सुरक्षा करते हुये उनको जीवित रखने के साथ उचित वृद्धि एवं विकास की तरफ ले जाने से ही बागवान भाइयों की मेहनत एवं धन को सुरक्षित किया जा सकता है।

पौधे की उम्र बढ़ने पर विपरीत मौसम के विभिन्न दुष्प्रभावों के साथ-साथ उन पर विभिन्न कीटों एवं रोगों का भी आक्रमण अधिक होने लगता है जिनसे उनकी ससमय उचित सुरक्षा उनके गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन में रहने हेतु अति आवश्यक है।

इसलिए नवरोपित एवं पुराने फलोद्यानों में पौधों की सुरक्षा हेतु नीचे दिए गए विभिन्न तरीकों को अपना कर बागवान भाई बागों की रक्षा एवं सुरक्षा करके उनसे भविष्य में गुणवत्तायुक्त उत्पादन के कारण अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

गर्म मौसम का फलोद्यानों पर प्रभावः-

विभिन्न फल पौधों की वातावरण के उच्च तापमान के प्रति अलग-अलग सहनशीलता होती है परन्तु वातावरण में तापमान की वृद्धि के कारण नवरोपित फल वृक्षों की नई पत्तियाँ व शाखायें अधिक गर्मी के कारण झुलस जाती हैं। इन पौधों से वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है एवं इसके साथ ही पौधों के मुख्य तनों एवं शाखाओं की छाल में भी कभी-कभी चटकन आ जाती है। जिससे पौधों का आकार भी बिगड़ जाता है या पौधा ही मर जाता है। कुछ वर्ष पुराने पौधों के खुले भागों पर जब सूर्य की तीव्र किरणें पड़ती है तो उनमें झुलसन के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। यह प्रभाव पौधे के दक्षिण-पश्चिम दिशा की तरफ के भाग पर अधिक दिखाई पड़ता है। कभी-कभी शाखायें भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इसको धूप झुलसन कहा जाता है।

पुराने पौधों में अत्यधिक धूप से नई शाखायें व विकसित हो रहे फल भी प्रभावित हो जाते हैं। प्रभावित भागों की वृद्धि रूक जाती है। जबकि दूसरी दिशा में पौधे वृद्धि करते रहते हैं। परिणामस्वरूप पौधों का आकार बिगड़ जाता है तथा वह कुरूप हो जाते हैं एवं फलों की गुणवत्ता भी खराब हो जाती है।

गर्म मौसम से बचाव के उपायः-

बड़े फल वृक्षों को गर्म मौसम से बचाने के लिये बगीचे में निम्नलिखित उपाय अपनाये जाने से पौधों की सुरक्षा के साथ उत्पादन भी प्रभावित नहीं होता है।

1. **तनों पर सफेदी की पुताई :** अप्रैल माह में पौधे के मुख्य तने व मोटी शाखाओं पर 25 कि0ग्रा0 बिना बुझा चूना तथा 02 कि0ग्रा0 कापर सल्फेट को 450 लीटर पानी में घोल कर अच्छी तरह से मिलाकर पौधो के तने पर चारों तरफ से पोत देते हैं। जिससे पौधों पर गर्मी का दुष्प्रभाव कम पड़ता है।

2. **तने के आधार को लपेटना :** नये पौधे के तने के निचले भाग को टाट या धान के पुवाल से ढक देते है जिससे सूर्य की किरणें उस पर सीधी नहीं पडती है। इससे पौधों से होने वाली वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में भी कमी आ जाती है।

3. **पौधों पर छाजन (Thatching) डालना :** कम उम्र के पौधों को सरकन्डो, सरसों के तनों, गन्ने की पत्तियों या टाट-पट्टियों से इस प्रकार ढक देते हैं कि सूर्य की सीधी किरणें पूरे पौधे पर कम पड़े तथा इससे गर्म हवाओं से भी पौधों का बचाव होता है फलस्वरूप पौधों से उड़ने वाली नमी में कमी आ जाती है।

4. आवश्यक मात्रा में समय से सिंचाई : गर्मी के दिनों में छोटे-छोटे अन्तरालों पर पौधों की सिंचाई करने से गर्मी से बचाव होता है। पौधा अधिक मात्रा में वाष्पोत्सर्जन करता है जिससे उसका तापमान कम हो जाता है। अतः पौधों के आसपास हल्की सिंचाई करके नमी को बनाये रखना लाभदायक रहताहै।

5. वायु प्रतिरोधक पट्टियों का रोपण : वायु प्रतिरोधक पट्टियों के लगाने से उत्तरी भारत के मैदानों में उत्तर-पश्चिम की ओर से चलने वाली गर्म हवाओं का सीधा प्रभाव बगीचे के पौधों पर कम पड़ता है परिणामस्वरूप बगीचे से नमी कम उड़ती है। जिससे ये गर्म हवायें नये पौधों को कम हानि पहुँचाती है। यह पट्टी आंधी एवं तूफान से भी नये व पुराने वृक्षों की रक्षा पट्टिका में रोपित पौधों की लंबाई की ढाई गुना दूरी तक करता है।

शरद ऋतु का पौधों पर प्रभाव :

शरद ऋतु में नये रोपित व विकसित हो रहे पौधों पर पाला आदि कारकों का हानिकारक प्रभाव पड़ने से पौधों की मृत्यु हो जाती है। बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में तापमान के कम होने से या पाले के कारण शाखाओं एवं टहनियों की छाल एवं केम्बियम बद रंग हो कर मर जाती है या वह सामान्य वृद्धि नहीं कर पाती है। ज्यादा पाला पड़ने की दशा में तना या शाखा की सम्पूर्ण लम्बाई में छाल चटक जाती है और उसमें कवक का विकास होने से पौधा मर जाता है। अतः इस समय पौधो को कम तापमान से बचाना अतिआवश्यक होता है।

शरद ऋतु में पौधों की देखभाल :

1. नये पौधों को तीन दिशाओं से टाट से ढंकना: नये पौधों में 20-25 सेंमी0 की दूरी पर त्रिभुजाकार या चर्तुभुजाकार रूप में पौधो की लम्बाई से 15-20 सेंमी0 बड़ी तथा 3 या 4 लकड़ियों को लगाकर पूर्व की दिशा में खुला रखते हुए शेष तीन दिशाओं से जूट का बना बोरा या टाट लगा देते हैं, जिससे पौधो के आसपास का तापमान बाहर की तुलना में अधिक रहने से पौधों पर शीत का विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है और वह वृद्धि की अवस्था में बने रहते है।

2. पौधों के तनों को ढंकना : बगीचे में नये पौधो के तनों को चारों तरफ से टाट से लपेटकर ढकने से भी पौधो के ऊपर शीत ऋतु में कम तापक्रम का दुष्प्रभाव नहीं या बहुत कम पड़ता है और पौधो मरने से बच जाते हैं।

3. पौधों के तनों के पास भूमि पर चारों तरफ पलवार बिछाना : सर्दियों में पौधों के तनों के आसपास की भूमि एवं बगीचे में घास-फूस, पुआल, पत्तों या अन्य पदार्थ की पलवार बिछा देने से पौधो के आसपास एवं बगीचे का तापक्रम कम नहीं होने पाता है और पौधा सर्दी में कम तापक्रम के कारण मरने से बच जाता है।

4. बगीचे के बाहर वायु अवरोधी पौधों को लगाना : बगीचे के उत्तर एवं पश्चिम दिशा में वायु अवरोधी पौधो जैसे-नीम, शीशम, देशी आम, जंगली जलेबी आदि को एक वायु अवरोधी पंक्ति के रूप में रोपित कर देने से कम तापक्रम से होने वाली क्षति से पौधों की सुरक्षा काफी हद तक सुनिश्चित की जा सकती है।

5. उचित समय एवं उचित अंतराल पर सिंचाई : नये लगाये गये पौधो कम उम्र के एवं मुलायम होने के कारण उनमें हल्की मात्रा में एवं नियमित अंतराल पर सिंचाई करना अति आवश्यक होने के साथ-साथ अत्यंत लाभदायक रहता है। इसका लाभ यह भी रहता है कि शीतकाल में पौधो के अंदर का उपस्थित जीव द्रव्य जमने नहीं पाता और पौधा मरने से बच जाने के साथ वृद्धि एवं विकास की अवस्था में बना रहता है।

सदाबहार वृक्ष जैसे-आम, अमरूद, किन्नों, चीकू, जामुन, आदि फलकम या अधिक तापक्रम के प्रति अधिक सहनशील होते है इसलिए इनका रोपण अधिक क्षेत्रफल में करना चाहिए।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त विभिन्न विधियों को अपना कर बागवान भाई मौसम की विपरीत परिस्थितियों में अपने फलोद्यान की रक्षा कर सकते हैं और धान एवं समय की क्षति को बचाते हुए भविष्य में अधिक गुणवत्ता युक्त उत्पादन प्राप्त लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

❖❖

अखरोट की खेती

के. के. प्रामानिक, के. के. शुक्ला, एस. वाटपाडे, संतोष पटियाल एवं जितेन्द्र कुमार
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
क्षेत्रीय केन्द्र,(खाद्यान्न एंव उद्यान फसलें), अमरतारा कोटेज, शिमला-171004
पत्राचारकर्ता : kallalpramanik@gmail.com

प्रस्तावना

अखरोट हमारे स्वास्थ्य के लिए काफी फायदेमंद होता है। विश्व व घरेलू बाजार में अखरोट की भारी मांग है। जलवायु परिवर्तन के वर्तमान दौर में अखरोट की खेती महत्वपूर्ण स्थान ले सकती है, क्योंकि यह फलदार पेड़ विपरीत परिस्थितियों को झेलने की अपार क्षमता रखता है। अखरोट उच्च पोषण तत्वों से भरपूर है जैसे-प्रोटीन, वसा, और विटामिन। अखरोट में एंटीऑक्सीडेट गुण भी होते हैं,जो स्वास्थ्य वर्धक होते है। अखरोट का पौधा सामान्यतः रोपाई के 10-15 वर्षों के बाद ही फल देना शुरू करता है। इस समस्या के उपचार में, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केन्द्र, शिमला में हिमाचल प्रदेश से एक किस्म का मूल्यांकन किया जा रहा है। यह पूसा खोर के नाम से जानी जाती है। यह ग्राफटिंग के दूसरे साल में ही यह फल देना शुरू करती है। इस की गुठली का रंग हल्का भूरा होता है, यह उच्च घनत्व बागान के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

अखरोट प्रोटीन, वसा और खनिज लवणों का मुख्य स्रोत हैं अन्य गिरीदार फलों की अपेक्षा इसमें विटामिन बी- 6 पाया जाता है। अखरोट के अधपके फल तथा हरे नट एसकोर्बिक अम्ल का मुख्य स्रोत हैं अखरोट की गिरी में 14.8 ग्राम प्रोटीन, 64 ग्राम वसा, 15.80 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 2.1 ग्राम रेशा, 1.9 ग्राम राख, 99 मिलीग्राम कैल्शियम, 380 मिलीग्राम फास्फोरस, 450 मिलीग्राम पोटैशियम प्रति 100 ग्राम में पाया जाता हैं अखरोट के अधपके फलों का प्रयोग अचार, चटनी, मार्मेलेड, जूस तथा सीरप बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। अखरोट का तेल खाने, वार्निश तथा साबुन बनाने में प्रयोग किया जाता हैं। अच्छी खुशबू के कारण इसके सूखें फलों को खाने में प्रयोग किया जाता हैं

महत्वः

अखरोट की खेती या बागवानी भारत देश में मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्रो में की जाती हैं इसका अधिकतम उपयोग मिष्ठान उद्योग में किया जाता हैं। मस्तिष्क रुपी अखरोट दिमाग की सेहत के लिए अत्यंत लाभदायक होता हैं। अखरोट की खेती के लिए अंग्रेजी या फारसी किस्में ही व्यावसायिक स्तर पर महत्वपूर्ण हैं। यह उत्तर-पश्चिमी हिमालय का फल है और इसके पौधे समुद्रतल से 1200 से 2200 मीटर की ऊँचाई तक उगते हैं।

समशीतोष्ण कटिबंधीय जगहों में बादाम, अखरोट, पिकान, चैस्टनट महत्वपूर्ण गुठलीधार फल प्रजातियां है, जो कि तेल, प्रोटीन, विभिन्न विटामिन एंव खनिजों से परिपूर्ण होते हैं। भारत में, हिमाचल प्रदेश अखरोट उत्पादक के क्षेत्र में द्वितीय स्थान रखता है। यहां पर अखरोट की पैदावार बढ़ाने क्षमता है परन्तु अगर यह बीज से लगाया जाता है तो 15-20 साल के बाद ही यह फल देना शुरू करता है।

अखरोट प्राचीन काल से इस्तेमाल किया जाता है, परन्तु इसके बाग केवल पिछली सदी के अंत में लगाए जाने शुरू किए गए। चीन दुनिया में मुख्य अखरोट उत्पादक देश है। भारत में 2,94,400 मिलियन टन का सालाना उत्पादन होता है और यह स्पेन, मिस्र, फ्रांस, अरब जर्मनी, नीदरलैंड, ब्रिटेन और ताइवान जैसे देशों के लिए अखरोट निर्यात करता है।

अखरोट के बगीचे की स्थापना के लिए उच्च विकास की लागत के लिए कम उम्र की फसल का आना एक महत्वपूर्ण विचार है, और साथ ही साथ अच्छी गुणवत्तायुक्त गुठली का होना अनिवार्य है।

अभी तक अखरोट बीज से ही लगाया जाता रहा है, इसलिए हर एक पौधा एक दूसरे से भिन्न होता है। स्थानीय किस्मों के उचित वर्गीकरण की अनुपस्थिति, अच्छे रुटस्टॉक की अनुपलब्धता, कम पेड़ घनत्व प्रति हेक्टेयर और कम उत्पादकता इसकी प्रमुख समस्या है। इन सब समस्याओं का समाधान करने के लिए यह कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केन्द्र, शिमला हिमाचल प्रदेश के चम्बा ज़िले से एक किस्म का मूल्यांकन किया जा रहा है। यह पूसा खोर के नाम से जाना जाता है। यह ग्राफ्टिंग के दूसरे वर्ष से ही फल देना शुरू कर देता है। अखरोट जोकि

बीज से लगाया जाता है, वह बहुत अच्छी गुणवत्ता और भारी फसल वाले अखरोट (पुसा खोर) की एक अनूठी विशेषता है। इसके एक फल का वज़न 59.35 ग्राम है पूसा खोर का बाहरी छिलका पतला है और इस के तेल की मात्रा 55 फिसदी है।

पूसा खोर की खेती

जल्दी फसल के लिए अखरोट पौध प्रवर्तन में टंग या वीनियर ग्राफटिंग फरवरी और मार्च के प्रारम्भ में ही अच्छे परिणाम देता है। ऐपीकोटाइल ग्राफटिंग अखरोट की फसल में सफलता देती है। 15 से.मी. की 5-6 महीने पुरानी वंशज लकड़ी रुटस्टॉक पर ग्राफ्ट किया जाता है। एक साल पुराने रूट्स्टॉक के रूप में पौध इस्तेमाल किया जा सकता है।

रोपण खाद और उर्वरक

अखरोट में वर्ग प्रणाली विभिन्न सांस्कृतिक प्रथाओं के लिये किया जाता है। प्रचलित विधि (Conventional Method) के अनुसार सितम्बर महीने के दौरान 1.25 x 1.25 x 1.25 मीटर के गड्ढे 10 x 10 मीटर की दूरी पर खोदा जाना चाहिए। गड्ढे में 50 किलो गोबर (सड़ा हुआ), नीम की खली 2 किलो, 150 ग्राम यूरिया, 500 ग्राम प्रत्येक सूपरफौस्फेट और पोटाश की लवणमय मिश्रित मिट्टी के साथ भरा जाना चाहिए। अखरोट वृक्षारोपण के लिए अच्छा मौसम दिसम्बर से जनवरी होता है। रूटस्टॉक और वंशज जोड़ के आस -पास के हिस्से को ज़मीन की स्तह के ऊपर कम से कम 15 से.मी. ऊपर होना चाहिए। पानी वृक्षारोपण के बाद जल्द ही दिया जाना चाहिए।

एक साल पुराने पौधे को 500 ग्राम यूरिया और 750 ग्राम सूपरफौस्फेट और पोटाश की लवणमय की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे पेड़ की उम्र बढ़ती है, वैसे-वैसे पोषण की ज़रूरत भी बढ़ती रहती है। सूपरफौस्फेट और पोटाश की पूरी खुराक और युरिया की आधी खुराक अक्टूबर में देनी चाहिए और आधी खुराक फरवरी के महीने में देना चाहिए। पतों पर माइक्रोन्यूट्रीयेंट जैसे-जस्ता, तांबा, मैग्नीज़, बोरान, लोहा और मेग्नीशियम का स्प्रे मार्च के महीने में किया जाता है।

प्रशिक्षण और छंटाई

अखरोट दोनों टर्मिनल और पार्श्व कली फल है। अखरोट या तो टर्मिनल या दोनों टर्मिनल और आड़ा एक साल पुरानी लकड़ी पर फल लगता है। एक साल के विकास के बाद, पेड़ 2 मीटर से ऊपर काट दिया जाता है। कुछ शाखाओं को छोड़कर पेड़ का विकास अपने अनुसार किया जा सकता है।

कीट व रोग रोकथाम

वालनेट वीवल (धुन)-सुंडी विकसित फलों में प्रवेश करके गिरी खाती है और इसको काले सड़े पदार्थ में बदल देती हैं एवं प्रभावित फल सुंडी समेत झड़ जाते हैं।

रोकथाम-पेड़ के बड़े आकार के कारण कीटनाशी छिड़काव नितान्त कठिन तथा महंगा पड़ता है। अतः बागबानों को मिलकर गिरे हुए फलों को एकत्र करके गड्ढे में दबा कर या जला कर नष्ट कर देना चाहिये।

ब्लाच धब्बे वाले रोग (नोमोनिया लैपटोसाइला)- इस रोग से पत्तों पर धब्बे पड़ जाते हैं और छिलके पर गोल मृत धब्बे उत्पन्न हो जाते हैं और फल समय से पहले ही झड़ने लगते हैं।

रोकथाम-बोर्डेक्स मिश्रण (4:4:50) का पत्तियाँ खुलते समय की अवस्था में छिड़काव करें, दो सप्ताह बाद फिर दोहराएं और फिर पूर्ण पत्ती विकसित होने पर छिड़काव करें।

संचयन और उपज

अखरोट की फसल सितम्बर और अक्टूबर के बीच में तैयार हो जाती है। कटाई अंतराल 2 से 3 बार दोहराया जाता है। फलों को धोया जाता है और धूप में सुखाया जाता है। सुखाए हुए फल अपने आकार और रंग के अनुसार वर्गीकृत किए जाते हैं। अखरोट की उपज पेड़ों की उम्र, आकार और विविधता पर निर्भर करती है।

निष्कर्ष

अखरोट के पोषकीय महत्व के कारण आज इसकी व्यवसायिक माँग बहुत अधिक है। अखरोट के वृक्ष को फल देने में बहुत अधिक समय लगता है परन्तु यदि उपरोक्त विधि द्वारा अखरोट के इस नये किस्म की खेती करते हैं तो हमें बहुत ही जल्द उपज मिलनी शुरू हो जाती है और जिसकी गुणवत्ता भी अच्छी होती है। इस प्रकार हम कम समय व कम जगह में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

❖❖

मध्य प्रदेश में आम की सघन बागवानी-दोगुनी आय का साधन

नकुल राव रंगारे, एस. के. पांडे, भरत कुमार एवं गजेन्द्र कुमार राणा

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर

पत्राचारकर्ता : nrrangare@yahoo.co.in

प्रस्तावना

आम बहुवर्षीय फलदार पौधा है। भारत में आम की बागवानी मुख्य फल-फसल के रूप में की जाती है। देश की आबादी तेजी से बढ़ रही है। जिसके साथ-साथ ज्यादा भोजन व समुचित पोषण की भी आवश्यकता बढ़ रही है। ऐसी स्थिति मे खेती एवं बाग़ को बढ़ावा देना होगा तभी हम खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को प्राप्त कर पायेंगे। इसके लिए आधुनिक तकनीक को अपनाने की आवश्यकता है, जैसे सघन बागवानी, सूक्ष्म सिंचाई, आम की संकर किस्म इत्यादि। सघन बागवानी से कम स्थान पर उच्च गुणवत्ता के साथ अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। आम के उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। देश में 2.516 हज़ार हैक्टेयर क्षेत्र में आम की खेती की जा रही है जिससे 18.431 हज़ार मीट्रिक टन आम का उत्पादन होता है। मध्य प्रदेश मे आम का उत्पादन लगभग 0.252 हज़ार हैक्टेयर क्षेत्र में किया जा रहा है व कुल उत्पादन 3.76 हज़ार मीट्रिक टन होता है। (कुमार एन., 2019,High Density Planting in Mango – Prospects and Problems)

आम की संकर किस्म के पौधे शीघ्र ही फल देना शरू कर देते है और इनका फैलाव (canopy) भी कम होता है। इस कारण इन्हें सघन बागवानी में भी लगाया जा सकता है। संकर किस्मो में नियमित फल आते है साथ ही प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पादन तथा फल की गुणवत्ता भी अच्छी है। इस पद्धति में मजदूरी भी कम लगती है, क्योंकि पौधों को कटाई-छंटाई करके छोटा रखा जाता है जिससे पौधे पर किया जाने वाला शस्य कार्य आसानी से हो पाता है। इस पद्धति में पूरे स्थान का सही-सही उपयोग किया जाता हैं। सघन बागवानी में खाद, पानी, सूर्य की रोशनी, फफूंदनाशी, कीटनाशी का लगभग पूरा का पूरा उपयोग हो जाता है जिससे कि परम्परागत बागवानी की अपेक्षा प्रति हेक्टेयर उत्पादन अधिक होता है।

भूमि की तैयारी एवं रोपण - आम की बागवानी लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। इसके लिए दोमट एवं गहरी भूमि जिसका पी.एच. मान 5.5 से 7.5 के मध्य हो उपयुक्त मानी जाती है। अप्रैल-मई में खेत की गहरी जुताई कर 10-15 दिन के लिए छोड़ देते हैं। इससे खेत के कीट मर जाते है और फिर खेत को समतल करके पौधा से पौधा एवं कतार से कतार की दूरी के अनुसार रेखांकन कर लेना चाहिए।

सघन बागवानी हेतु आम्रपाली किस्म को अच्छा माना गया है, जिसके लिए पौधे से पौधे के बीच की दूरी 2.5 x 2.5, 2.5 x 3 या 3 x 3 मीटर पर रेखांकन करना चाहिए व अन्य किस्मों जैसे-मल्लिका, दशहरी के लिये 5 x 5 मीटर पर रेखांकन करना चाहिए। रेखांकन के बाद गड्ढे की खुदाई कर मानसून से पहले 1.5 किग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 20 मिली. ग्रा. क्लोरोपाइरीफ़ॉस एवं 30-40 किलोग्राम गोबर की खाद या 2 किलो केंचुआ खाद मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को भर देना चाहिए।

पौध रोपण - जिन स्थानों में अधिक वर्षा होती है वहाँ सितम्बर माह में और जहाँ सामान्य वर्षा होती है वहाँ जुलाई-अगस्त के मध्य माह तक तैयार गड्ढों में बीचो बीच पौधे को सावधानीपूर्वक लगा देते हैं एवं पौधे के चारो तरफ के मिट्टी को अच्छी तरह दबा देते हैं। पौधा लगाने के तुरंत बाद सिंचाई करना चाहिए।

कटाई-छंटाई- सघन बागवानी के अंतर्गत प्रारंभिक कटाई-छंटाई करना अत्यंत आवश्यक होता है। इसके लिए पौधे की जमीन से 60-70 सेंमी. पर शीर्ष कटाई की जानी चाहिए। यह कार्य अक्टूबर-दिसम्बर तक करना चाहिए। कटाई के फलस्वरूप मार्च-अप्रैल में नए प्ररोह उत्पन्न होते है जिसमें से चार प्ररोहों को चारों दिशाओं में रखकर शेष सभी को हटा देते हैं। यह कार्य मई महीना में किया जाता है। फिर इन चार प्ररोहों का अक्टूबर-नवम्बर में कटाई किया जाता है। इस तरह कटाई-छंटाई करके पेड़ के चारों तरफ 3-4 शाखाओं को बढ़ने देते हैं फिर इन्हीं शाखाओं से पौधे का आकार छतरीनुमा करने के लिए उचित कटाई-छंटाई निश्चित अंतराल पर करते रहना आवश्यक है। इसके उपरांत सूखी, अवांछित, घनी शाखाओं को एवं लगभग 15-20 प्रतिशत कल्लों को भी प्रतिवर्ष निकालते रहना चाहिए। प्ररोहों की कटाई-छंटाई के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2-3 ग्राम/लीटर पानी) या कार्बेन्डाजीम (2 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

पोषक प्रबंधन- 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फास्फोरस एवं 100 ग्राम पोटाश प्रति पौधा प्रतिवर्ष डालना चाहिए। द्वितीय वर्ष मे यह मात्रा दोगुनी, तृतीय वर्ष मे तीनगुनी एवं इस क्रम मे 9 वे वर्ष तक दी जाती है। तत्पश्चात यह मात्रा 10 वर्ष के बाद 1 किग्रा. निश्चित कर देते हैं। इसके अतिरिक्त सड़ी हुई गोबर की खाद शुरू के 10 वर्षों तक 40-50 किग्रा. एवं 10 वर्ष के बाद 70-80 किग्रा. प्रति वृक्ष जुलाई में डालना चाहिए। यूरिया की आधी मात्रा एवं फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा जुलाई में तथा यूरिया की शेष आधी मात्रा अक्टूबर में डालना चाहिए।

मल्चिंग - हमारे द्वारा किये गये शोध कार्य के दौरान हर तीन महीनों में बागों की घास को काट कर एक तरफ फेंक दिया, जिससे पेड़ के नीचे मल्च की एक परत बन गई, इस मल्च ने हमारे बाग की मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार किया जिससे, पानी और पोषक तत्वों की होल्डिंग क्षमता में वृद्धि हुई है और हमें साल-दर-साल उच्च और लगातार पैदावार प्राप्त करने में मदद मिली है।

सिंचाई - फलों को झड़ने से रोकने और युवा फलों को बेहतर बनाने में मदद करने के लिए आम बागों की एक उचित सिंचाई महत्वपूर्ण है। पकने के चरण में अतिरिक्त सिंचाई के परिणामस्वरूप फल आकार और गुणवत्ता दोनों में महत्वपूर्ण सुधार होता है। आम के बागों की सफलता बड़े पैमाने पर सिंचाई के तरीके और प्रबंधन पर निर्भर करती है। उचित सिंचाई समय पर करने से विशेष रूप से पौधों की वृद्धि और फल विकास की अवधि के दौरान, बगीचे की स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली- इस प्रणाली में एक पानी की टंकी, पंपिंग इकाई, रासायनिक मिश्रण कक्ष, प्रवाह रिलीज पाइप, पानी की सफाई प्रणाली और पाइप के नेटवर्क शामिल होते है, जो आम के पेड़ों को पानी पहुँचाते हैं। प्रत्येक आम के पेड़ को सूक्ष्म ट्यूबों के माध्यम से पार्श्व रेखाओं से जुड़े 4 ड्रिपर्स / उत्सर्जकों के माध्यम से सिंचित किया जाता है। पार्श्व उप-मेनलाइन से जुड़े होते हैं जो मुख्य रेखा से पानी प्राप्त करते हैं जिसमें स्रोत से पंपिंग इकाई के माध्यम से पानी की आपूर्ति की जाती है। प्रत्येक पेड़ को सिंचाई करने के लिए दो पार्श्व रेखाएं प्रदान की जाती हैं। हालांकि, प्रत्येक पार्श्व रेखा पर दो ड्रिपर्स उनके बीच एक मीटर की दूरी पर तय करते हैं। ऑपरेटिंग दबाव के आधार पर, ड्रिपर्स प्रति घंटे 50 से 60 लीटर पानी निर्वहन कर सकते हैं। एक पूरी तरह से उगाए जाने वाले आम के पेड़ को 120 लीटर पानी प्रति दिन की आवश्यकता होती है।

आम्रपाली किस्म की विशेषता - उद्यान शास्त्र भवन जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय मे आम की किस्म आम्रपाली को सघन माध्यम से लगाया गया (पौधों के बीच की दूरी 2.5 x 2.5, 2.5 x 3 तथा 3 x 3 मीटर) है तथा 2.5 x 3 मीटर की दूरी मे अधिक फसल पाई गई है। आम्रपाली प्रति वर्ष फलने वाली किस्म है, दूसरे किस्मों की अपेक्षा फल की गुणवक्ता अधिक अच्छी है। एक 10-12 वर्ष के वृक्ष में जिसकी ऊँचाई 4 मीटर होती है, प्रतिवर्ष 13 किलोग्राम फल लगते हैं। एक फल का वजन 195 ग्रा., गूदा 125 ग्रा. बीज का वजन 28 ग्रा., छिल्का 36 ग्रा., टी. एस. एस. 22.4%, अम्लता 0.35%, एवं कुल शर्करा 18%, होता है।

उपज - वर्ष 2013 में प्रति वृक्ष 13 किलोग्राम तथा वर्ष 2014 मे प्रति वृक्ष 15 किलोग्राम फल लिए गये, जो की वर्ष 2018 तक बढ़कर 22 किलोग्राम फल प्रति वृक्ष हो गए है। इस

प्रकार देखा जाए तो सामान्य बागवानी की अपेक्षा सघन बागवानी मे 10 साल तक वर्ष प्रति वर्ष फल उत्पादन बढ़ता जाता है तथा 5-6 गुना अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।

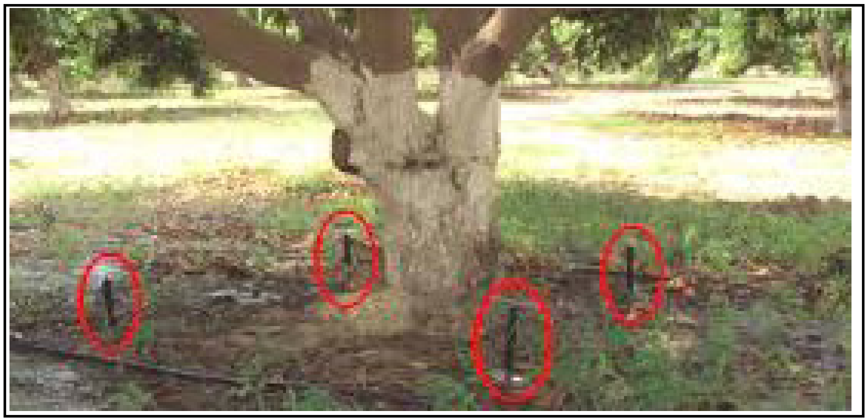

सघन बागवानी व साधारण बागवानी मे अंतर

क्र. सं.	आम की सघन बागवानी	आम की साधारण बागवानी
1	पौधों की आपसी दूरी 2.5- 3.0 मीटर होती है।	पौधों की आपसी दूरी 10 मीटर होती है।
2	इसमें प्रति हेक्टेयर 1333 वृक्ष लगाए जा सकते हैं।	इसमें प्रति हेक्टेयर 100 पौध/लगाए जा सकते हैं।
3	60 सेमी की ऊंचाई पर काट कर 3-4 शाखाओं को भी 50-60 सेमी से अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता है।	इसमें बढ़ने दिया जाता है, जिससे शाखायें फैलजाती है।
4	आकार मे छोटे होने के कारण प्राकृतिक संसाधनो का अधिक उपयोग होता है जैसे - जमीन, पानी, धूप आदि जो की उपज वृक्ष के लिए लाभप्रद है।	आकार मे बड़े होने के कारण प्राकृतिक संसाधनो का अधिक उपयोग नहीं हो पाता है।
5	सघन खेती मे प्रति वृक्ष अधिक उत्पादन होने के कारण प्रति क्षेत्र में उत्पादन भी बढ़ जाता है।	साधारण बागवानी प्रति वृक्ष कम होते है फलस्वरूप उत्पादन भी कम होता है।
6	पौधों का आकार छोटा होने के कारण कटाई-छटाई, तुड़ाई तथा छिड़काव मे भी आसानी होती है।	पौधों का आकार अधिक होने के कारण कटाई-छटाई, तुड़ाई तथा छिड़काव में परेशानी होती है।
7	इस प्रकार की बागवानी में समय कम लगता है तथा मजदूर लागत कम लगती है फलस्वरूप कम लागत में अधिक आय मिलती है।	इस प्रकार की बागवानी मजदूर लागत अधिक होती है व समय अधिक लगता है जिससे लागत बढ़ जाती है तथा आय में कमी आती है।
8	पौधों का आकार छोटा होने के कारण सूर्य का प्रकाश गहराई तक जाता है जिससे प्रकाश संश्लेषण अधिक होने के साथ ही अधिक उत्पादन व गुणवत्ता वाले फल मिलते है।	पौधों का आकार बड़ा होने के कारण सूर्य का प्रकाश गहराई तक नहीं जाता है जिससे प्रकाश संश्लेषण मे तो कमी होती ही है, साथ ही फल के उत्पादन व गुणवत्ता में भी कमी होती है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में जनसंख्या बहुत तीव्र गति से बढ़ रही है एवं खेतिहर भूमि की समस्या भी वैसे-वैसे बढ़ रही है। आम बहुत ही लोकप्रिय फल है एवं इसका हमारे समाज में धार्मिक महत्व भी है। यदि उपरोक्त विधि द्वारा आम की बागवानी की जाय तथा इसके पोषक प्रबन्धन पर ध्यान दिया जाय तो कम समय व कम जगह में अधिक फलन प्राप्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ-_Agri. Rea. and Tech. Journal_, p.p. 47-53.

पौष्टिक पशु आहार : अजोला एक सशक्ति माध्यम

डॉ. सुनील कुमार जाटव, डॉ. रोशनलाल राऊत, डॉ. बी.के. प्रजापति, डॉ. एस.आर. धुवारे, एम.पी. इंगले, श्री सुखलालवास्केल, जितेन्द्र मर्सकोले, हेमंत राहंगडाले एवं धमेन्द्र आगाषे

कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : drskijatave@gmail.com

प्रस्तावना

दूध के लिये बढ़ती मांग के कराण पशुपालन व्यवसाय को और लाभदायक बनाने की नई संभावनाओं की तलाश की जा रही है, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन के लिए घटते उन्नत चरागाह एवं कृषि अवशेषों तथा पशु उत्पादन को साध्य और लाभदायक बनाने के लिए चारे के पारंपरिक स्रोत पर्याप्त नहीं हैं। कृषकों को परम्परागत खाद्यान्न उत्पादन कृषकों को परम्परागत खाद्यान्न उत्पादन कार्य के साथ-साथ पशुपालन हेतु प्रेरित व प्रोत्साहित करना चाहिये। पशुपालन हेतु पशुओं को कम कीमत पर उन्नत पोषकतत्व युक्त आदर्श पशु आहार उपलब्ध कराना अति महत्वपूर्ण है।

अजोला एक छोटा अस्थायी जलीय फर्न हैं, जो जल की सतह पर तैरता रहता हैं। यह एशिया, अफ्रीका और अमेरिका से जन्मज हैं। अजोला जलीय फर्न की विश्व में छः प्रजातियाँ पायी जाती है। अजोलेसि जाति भारत में उगायी जाती है। यह स्वाभाविक रूप से नालियों, नहरो, तालाबों, नदियों और दलदली भूमि सहित जल निकायों में स्थिर जल में फैलता हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में छह प्रजातियों में से "अजोला पिन्नाटा" और "अजोला माइक्रोफिला" पायी जाती हैं। अजोला माइक्रोफिला को पशुओं के आहार के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती हैं। अजोला पत्ती के दो भाग होते हैं, एक ऊपरी भाग जो कि क्लोरोफिलस होता हैं और दूसरा आंशिक रूप से जलमग्न उदरीय भाग होता हैं। प्रत्येक पृठीय भाग में एक पत्ती गुहा होता हैं, जिसमें एक सहजीवी नीली हरी शैवाल 'अनाबेना अजोला' होता हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन के निर्धारण के लिए जिम्मेदार होता हैं। इसी तथ्य के कारण अजोला में अपेक्षाकृत उच्च स्तर में नाइट्रोजन होता है और जिसके कारण पशुओं के लिये उच्च मात्रा में प्रोटीन उपलब्ध होता है। यह आदर्श सदाबहार, पौष्टिक पशुआहार के साथ ही धान फसल में नत्रजन तत्व उर्वरक के जैविक स्रोत के रूप में भी अत्यन्त

उपयोगी है।

अजोला का पशु स्वास्थ्य पर प्रभाव

अजोला जलीय फर्न पोषण आहार मानदण्ड की दृष्टि से दुधारू पशुओं के लिये अत्यंत उपयोगी है। अजोला में 22 से 25 प्रतिशत प्रोटीन, 7-10 प्रतिशत अमीनो एसिड, विटामिन बी 12, बीटाकैरोटीन आदि वृद्धि नियामक माध्यमक एवं 10-15 प्रतिशत मिनरल्स जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, पोटेशियम लौह तत्व व मैग्नीशियम आदि समुचित मात्रा में पाये जाते है। अजोला में कार्बोहाइड्रेट व वसा की मात्रा अत्यंत कम होती है। इस प्रकार अजोला में उपस्थित अधिक प्रोटीन व कम लिग्निन के कारण यह पशुओं के लिए अत्यन्त पोषणदायी, उपयोगी

व सुपाच्य आहार साधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

अजोला उत्पादन की विधि :

अजोला का उत्पादन कई तरीकों से किया जा सकता है जैसे - सीमेंट टब, स्थायी कंकरीट टैंक, प्राकृतिक जल निकायों, भूमिगत गड्ढों, ईंटो की खड़ी की गड्ढों अर्ध-निर्मित ईंट-लिखित दीवार आदि, हालांकि उत्पादकता भूमिगत गड्ढे और ईंट से बनाये गये दीवार प्रकार सबसे अच्छी मानी जाती हैं।

अजोला उत्पादन की विधि (एनडीआरआई पद्धति) :

1. बिस्तर की तैयारी : लगभग 10 वर्ग मीटर (12 फीट × 3 फीट) आकार का एक गड्ढा चुना जाता है और किसी भी जड़ और अन्य पौधों को निकालकर गड्ढे को समतल किया जाता है। उपलब्ध संसाधनों और आवश्यकता के आधार पर गड्ढे का आकार और संख्या का चयन किया जा सकता हैं।

2. गड्ढे का गठन : खुदाई या ईंटो की सहायता से 20-30 सेंटीमीटर ऊँचाई का कृत्रिम टैंक बनाया जाता है।

3. शीट का फैलाव : उपयुक्त आकार के सिलप्लाईन शीट (या अन्य अच्छी गुणवत्ता वाले पॉलिथीन शीट) को (जैसे कि 12 फीट x 9 फीट की गड्ढे के लिए 15 फीट x 12 फीट आकार) समान रूप से फैला देते है जिसमें कि कोई छिद्र न हो तथा उसके किनारों को मिट्टी या ईंटो से अच्छी तरह से दबा देते हैं।

4. मिट्टी के फैलाव : लगभग 30-35 कि.ग्रा. (3-3.5 कि.ग्रा. वर्ग मीटर) छनी हुई उपजाऊ मिट्टी के ऊपर 1 से 2 सेंटीमीटर समतल मिट्टी का बिस्तर बनाना चाहिये।

5. घोल को उड़ेलना : लगभग 3 कि.ग्रा. गोबर और 80-90 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फट को 10-15 लीटर पानी में मिलाकर घोल बनाया जाता है और गड्ढे में डाल दिया जाता है।

6. पानी और अजोला को मिश्रित करना : लगभग 10-12 सेंटीमीटर की ऊंचाई तक गड्ढे में पानी भरें और करीब 1 किलोग्राम ताजा और शुद्ध अजोला माइक्रोफिला गड्ढे में मिश्रित करें।

7. आवधिक निवेश : अजोला के उत्पादन को बनाये रखने के लिये लगभग 250-300 ग्राम/वर्ग मीटर के हिसाब से गाय का गोबर एवं 8-9 ग्राम/वर्ग मीटर एस.एस.पी. (सिंगल सुपर फॉस्फेट) को हर सप्ताह मिलाना चाहियें।

अजोला के पशुआहार के वैकल्पिक उपयोग पर किये गये अनुसंधान से निम्नांकित परिणाम प्राप्त किये गये है-

1. पशु आहार में नियमित रूप से 1.5-2 किग्रा. अजोला मिलाकर खिलाने से 15 - 20 प्रतिशत दुग्ध उत्पादन में वृद्धि पाई गई।

2. 15-20 प्रतिशत खली की मात्रा अजोला की सूखी मात्रा से प्रतिस्थापित करने से पशुओं की दुग्ध क्षमता अप्रभावित होती है।

3. अजोला के उपयोग से दुग्ध उत्पादन की गुणवत्ता व मात्रा के सुधार के साथ ही पशुओं की स्वास्थ्य,प्रजनन क्षमता एवं दुग्ध अवधि में सुधार व बढ़ोतरी पाया गया।

4. उक्त के साथ ही अजोला मुर्गीपालन, बतख पालन, बकरी, भेड़ पालन, सुअर पालन आदि के लिये उत्तम आहार स्रोत के रूप में उपयोगी पाया गया।

5. प्रयोग मे धान की फसल के लिए नाइट्रोजन स्थिरीकरण स्रोत व खरपतवार नियंत्रण की दृष्टि से भी अजोला उपयोगी सिद्ध हुआ है। धान की उपज में 20 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है।

6. पशुओं की संख्या एवं उपलब्ध संसाधनों यथा भूमि व पानी आदि के आधार पर उक्त पिट्स(गड्ढों) का आकार व संख्या बढ़ाया जा सकता है।

7. उक्त अस्थायी गड्ढ़ों के स्थान पर सुविधा व सामर्थ्य अनुसार पक्के टांके/स्ट्रक्चर बनाकर स्थायी उत्पादन इकाई का निर्माण किया जा सकता है।

अजोला उत्पादन को प्रभावित करने वाले वातावरण के कारक

क्र.सं.	कारक	अधिकतम एवं न्यूनतम सीमा
1.	तापमान	25 से.ग्रे. - 30 से. ग्रे.
2.	प्रकाश	50 प्रतिशत पूर्ण
3.	आपेक्षित आद्रता	65-80 प्रतिशत
4.	जल सतह की गहराई	5-12 सेमी
5.	पी.एच. (अम्लता)	4-7.5
6.	लवणता	90-150 मिग्रा. प्रति लीटर

वातावरण का तापक्रम 35°से.ग्रे. से अधिक होने पर अजोला का उत्पादन प्रभावित होने लगता है।

ऐसे में अजोला के गड्ढों के ऊपर पौधे नर्सरी हेतु प्रयुक्त नेट (जाली) का उपयोग छाया देने हेतु किया जा सकता है। दूसरे उपाय के तौर पर गड्ढे में पानी का स्तर कम कर, संतृप्त (सेचुरेटेड) मिट्टी पर अजोला उत्पादन ले सकते है, क्योंकि पानी की तुलना में सेचुरेटेड मिट्टी का तापमान कम होगा।

अजोला उत्पादन के दौरान ध्यान रखने योग्य बातें

- अजोला की तेज बढ़त और दुगुना होने का न्यूनतम समय बनाये रखने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि एजोला को प्रतिदिन उपयोग के लिए बाहर निकाला जाये। (लगभग 200 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के मान से)
- समय पर गाय का गोबर एवं सुपर फॉस्फेट डालते रहना चाहिए जिससे फर्न तीव्र गति से विकसित होता रहे।
- अजोला तैयार करने के लिए उपयुक्त तापमान 30 डिग्री सेंटीग्रेड है। इसे अधिक तापमान बढ़ने से रोकना चाहिए। इसके लिये अजोला को तैयार करने का स्थान छायादार होना चाहिए।
- अजोला तैयार करने की टंकी में 'पी.एच.मान' का समय पर परीक्षण करना चाहिए। पी.एच. का उचित मान 5.5-7.0 के बीच होना चाहिए।
- प्रति 30 दिनों के अंतराल में, एक बार, एजोला तैयार करने की टंकी की लगभग 5 किलो मिट्टी, ताजा मिट्टी से बदल देना आवश्यक है ताकि नाइट्रोजन की अधिकता तथा अन्य लघु खनिजों की कमी होने से बचाया जा सके।
- प्रति 6 माह के अंतराल में, एक बार, अजोला तैयार करने की टंकी से 25-30 प्रतिशत पानी ताजे पानी से बदल देना चाहिए जिससे नाइट्रोजन की अधिकता होने से बचाया जा सके।
- अजोला के उपयोग करने से पहले ताजे, साफ पानी से अच्छे से धोना चाहिए जिससे गोबर की गंध निकल जाये।

अजोला खिलाने की विधि

- अजोला को खिलाने से पूर्व 1 सेमी बड़े साइज के छेद किये हुये ट्रे (छलनी) से निकालकर बांस की छोटी टोकरियों में एकत्र करना चाहिए ताकि पूरा पानी छन जायें।
- ट्रे को एक बाल्टी के ऊपर रखकर पानी से अच्छे से धोना चाहिए ताकि गोबर की गंध निकल जाये।
- बाल्टी में एकत्रित पानी को पुनः गड्ढे में डाल देना चाहिए।
- प्राप्त एजोला को पशु दाने या भूसा आदि के साथ मिलाकर पशु को खिलाना चाहिए।

अजोला खिलाने से लाभ

- इसे उत्तम पौष्टिक आहार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।
- ग्राम में घर या बाड़ी में किसी भी स्थान में एजोला का उत्पादन किया जा सकता है।

- पशुओं के साथ-साथ सह मुर्गियों के लिए भी उत्तम आहार है।
- दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ पशु के शारीरिक विकास व प्रजनन क्षमता में वृद्धि के लिए भी अजोला का उपयोग पशु आहार के रूप में कर सकते हैं।
- पशु आहार में इसके नियमित प्रयोग से खनिज मिश्रण चुनी चोकर आदि पर होने वाले व्यय में 50-60 प्रतिशत की कमी हो सकती है। यह चुनी चोकर दाना आदि का उत्तम विकल्प है।

अजोला उत्पादन में आने वाली समस्याओं का निराकरण

अजोला के विकास की गति धीमी होने का आमतौर पर इन कारणों में से कोई एक हो सकता है। फॉस्फोरस की कमी या तापमान की अधिकता/सूर्य का तेज प्रकाश।

(अ) फॉस्फोरस अल्पता - फॉस्फोरस की कमी से निबटने के लिये प्रति सप्ताह 5 किलो/हैक्टेयर के मानसे मोनो अमोनियम फॉस्फेट (16-20-0) या सुपर फॉस्फेट (0-16-0) डालना चाहिए।

(ब) उच्च तापक्रम/तीव्र सूर्य प्रकाश - तापमान की अधिकता होने पर एजोला भूरा या लालपन लिये हुये गुलाबी रंग का हो जाता है तथा सूर्य का तेज प्रकाश एजोला को चमकीले लाल रंग में बदल देता है। जिसका मुख्य कारण अधिक तापमान से रेमिनई फंगस का विकास करना है। एजोला का रंग बदल जाने पर क्लोरोफिल कम हो जाता है तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया ठीक प्रकार से नहीं हो पाती और अजोला के विकास की गति धीमी होने लगती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि अजोला पारम्परिक भूसे चारे का उत्तम विकल्प है जो पशुओं के लिये पोषक तत्वों से भरपूर है। अजोला के उत्पादन में विशेष देखरेख की आवश्यकता नहीं होती है। यदि पशुओं को नियमित रूप से अजोला खिलाया जाय तो वह स्वस्थ रहते ही है साथ ही उनमें दुग्ध उत्पादन की क्षमता में वृद्धि होती है। यह पशुओं के लिये उत्तम पशु आहार है।

❖❖

भारत में मधुमक्खी पालन

स्वप्निल पाण्डेय, शुभम कुमार, कुलश्रेष्ठ, अशोक कुमार वर्मा, बालकृष्ण नामदेव और बलवीर सिंह
रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन- मध्य प्रदेश- 464993

पत्राचारकर्ता : shubham.lucky786@gmail.com

परिचय

यह आर्थोपोडा समुदाय का एक शान्त स्वभाव का सामाजिक कीट है। मधुमक्खी एक ऐसा कीट है जिससे शहद उत्पादन होता है। मधुमक्खियों के निरंतर सेवाभाव से कार्य करने की प्रवृत्ति के कारण इन्हें संत की उपाधि दी गई है।

महत्व :

1. सम्पूर्ण विश्व में मुख्य रूप से मधुमक्खियों की 5 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनसे शहद प्राप्त होता है। इनमे से 4 प्रजातियाँ भारत में निवास करती हैं।

2. मधुमक्खियों की भाषा सभी जीव- जंतुओ में सबसे कठिन होती है। सन् 1973 ई. मेंकर्ल वेन फिंच को इनकी भाषा समझने के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

3. लगभग 40,000 फूलों से रस चूसने के पश्चात मधुमक्खियों से 1 किग्रा. शहद की प्राप्ति होती है।

4. मधुमक्खियों से प्राप्त शहद कई वर्षों तक रखा रहता है और जल्दी खराब नहीं होता है।

5. मधुमक्खियाँ कृषि फसलों के परागण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

6. पर्यावरण को अच्छा बनाये रखने में मधुमक्खी पालन भी महत्वपूर्ण है।

मधुमक्खियों द्वारा उत्पादित खाद्यः-

1. शहद

1. शहद में -फ्रक्टोज 42.2%,ग्लूकोज 34.71%,जल 17-18%, एल्युमिनाइड 1.18%, खनिज पदार्थ 1.06% पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मधु/शहद में विटामिन बी.,सी. साईट्रिक एसिड,फाल्विक एसिड आदि महत्वपूर्ण पदार्थ भी पाये जाते हैं।

2. विभिन्न फसलों के परपरागण से फसल की उपज में वृद्धि तथा फलों एवं बीजों की गुणवत्ता में वृद्धि होने का मुख्य

कारण मधुमक्खियां होती है।

3. विभिन्न ऋषियों द्वारा प्राचीनकाल से आयुर्वेद में यह विख्यात हुआ है कि यदि हम पंचामृत और तुलसी के पाउडर में इसको (शहद) मिलाकर सेवन करते हैं तो कोई भी संक्रमण नहीं होता है। इसका सही रूप में प्रयोग करने से विभिन्न प्रकार के रोगों से निजात पाया जा सकता है।

4. शहद/मधु एक प्राकृतिक स्वादिष्ट पदार्थ है जो मधुमक्खियों द्वारा फूलों के रस को चूसकर तथा उसमे अतिरिक्त पदार्थों को मिलाने के बाद छत्ते के कोष को एकत्र करने के फलस्वरूप बनता है।

5. शहद का उपयोग आँखों की रोशनी बढ़ाने, अस्थमा, रक्त शुद्धि, दिल के रोग और उच्च रक्तचाप को नियंन्त्रित करने में सहायक होता है।

6. यह जीवाणुरोधी होता है तथा इसका पी.एच. मान 3-4.8 होता है।

2. रॉयल जेली :

1. यह एक दूधिया/ सफेद रंग का चिपचिपा पदार्थ है जो जेली जैसा दिखता है, इसका निर्माण श्रमिक मधुमक्खियों द्वारा किया जाता है। साधारणतः इसमें लगभग 60-70% पानी,

12-15% प्रोटीन, 10-16 चीनी, 3-6 वसा और 2-3% विटामिन्स, साल्ट और अमीनो अम्ल होते हैं।

2. इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की बीमारियों जैसे- त्वचा की मरम्मत, कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण, स्तन कैंसर, गठिया,बांझपन, घाव को भरने लकवा और मधुमेह नियंत्रण आदि के रोकथाम के लिए किया जाता है।

3. स्तनपान कराने वाली और गर्भवती महिलाओं को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

4. कम रक्तचाप वाले व्यक्ति को इसका सेवन नहीं करना चाहिए अन्यथा रक्तचाप पहले से भी ज्यादा कम हो जायेगा।

5. यदि किसी अन्य प्रकार की दवाओं का सेवन अपनी दिनचर्या में कर रहे हैं तो इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

6. अस्थमा या किसी एलर्जी से ग्रसित व्यक्ति को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

7. रॉयल जेली आजकल लिक्विड, सप्लीमेंट,डाइटरी, कैप्सूल सॉफ्ट जेल, फ्रेश रॉयल जेली में भी उपलब्ध है।

मधुमक्खी का निवास स्थान

छत्ता :

मधुमक्खियों के उदर पर एक ग्रंथि होती है जिससे मोम निकलता है, इनसे ही ये अपने छत्ते का निर्माण करती हैं, जो छः कोनो वाले आकार का होता है। छः कोनो वाले खाने बनाकर मधुमक्खियाँ स्थान का सबसे अच्छी तरह इस्तेमाल करती हैं। इनका सबसे अच्छा गुण यह है कि ये कम मोम इस्तेमाल करके एक हल्का और मजबूत छत्ता बनाती हैं जिसमे ज्यादा से ज्यादा शहद एकत्र करती हैं। मधुमक्खियों का छत्ता दो प्रकार का होता है-

1) प्राकृतिक छत्ता

2) मानव निर्मित छत्ता

प्राकृतिक छत्ते प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाली मधुमक्खियों का निवास स्थान है जबकि पालतू मधुमक्खियाँ मानव निर्मित छत्ते में ही रहती हैं, जो अक्सर एपियरी हुआ करती हैं।

मधुमक्खी का जीवन चक्र :

मधुमक्खी आर्थोपोडा समुदाय का एक सामाजिक एवं लाभदायक कीट है, जिसके एक समुदाय में एक रानी, कई सौ नर और श्रमिक रहते हैं। एक साथ रहने वाली सभी मधुमक्खियाँ,मौनवंश (कॉलोनी) कहलाती हैं।

एक मौनवंश में तीन प्रकार की मधुमक्खियाँ होती हैं-

i) रानी

ii) नर

iii) श्रमिक/कमेरी

i) रानी- मौनवंशमें उपस्थित हजारों मधुमक्खियाँ में केवल एक ही मादा रानी मधुमक्खी होती है, जो कि अकेले ही पूरे मौनवंश में अंडे देने का काम करती है। यह आकार में सभी अन्य मधुमक्खियों से बड़ी और चमकीली होती है जिसको समूह/झुंड में आसानी से पहचाना जा सकता है। यह डंकहीन एवं केवल अंडे देने के लिए मौनवंश में होती है। यह अपने जीवनकाल के प्रारंभ में ही केवल एक ही बार मैथुन के लिए उड़ान भरती है जिसे नैप्टीयल फ्लाइट (मैथुन उड़ान कहते हैं) मैथुनोपरान्त रानी छत्ते में रहकर निषेचित/अनिषेचित अंडे देती है। निषेचित अंडों से श्रमिक मादा (रानी) तथा अनिषेचित अंडे से सदैव नर उत्पन्न होते हैं। रानी की जनन क्षमता बहुत ही तीव्र होती है तथा इसकी शारीरिक लम्बाई 15-20 मिमी तथा जीवन चक्र 2 से 5 वर्ष का होता है।

रानी मधुमक्खी 1 दिन में 2-2,000 तक अंडे तथा पूरे जीवनकाल मे 15 लाख अंडे देती है। जब यह अंडे देना बंद

कर देती हैं तो श्रमिक मधुमक्खियां इसको मार देती हैं और रानी पुत्रियों में से किसी एक को रानी मान लेते है।

ii) नर : नर आकार में रानी मधुमक्खी से 15-17 मिमी छोटे होते हैं, इनकी आंखें बड़ी उदर गोल,जननांग काला पूर्ण विकसित तथा मोम ग्रंथि, पराग थैली और डंक अनुपस्थित होते हैं। एक छत्ते में इनकी संख्या 15-200 तक होती है तथा ये अनिषेचित अंडों से उत्पन्न होते हैं। इनका मुख्य कार्य रानी

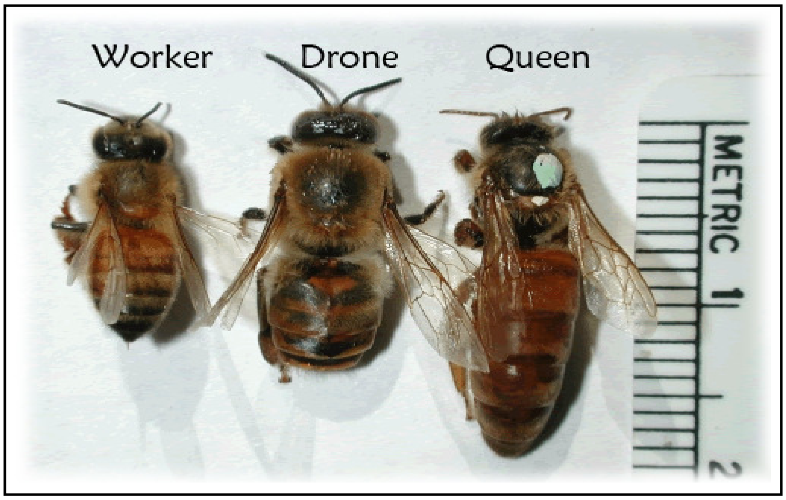

के साथ मैथुन करना है। इसके अतिरिक्त ये और कोई कार्य नहीं करते हैं तथा श्रमिकों द्वारा भोजन पर निर्भर रहते हैं।

iii) कमेरी मधुमक्खी (श्रमिक) : किसी मौनवंश में सबसे महत्वपूर्ण कमेरी (श्रमिक) ही होती हैं, ये फूलों से रस लाकर शहद बनाती हैं तथा अंडे- बच्चे की देखभाल और छत्ते के निर्माण का भी कार्य करती हैं। छत्ते में इनकी संख्या सर्वाधिक होती है। वास्तव में ये निषेचित अंडों से निकली हुई मादायें होती हैं, जिनको रॉयल जेली खाने को कम मिलता है। जिसके कारण यह बांझ रह जाती हैं। ये आकार में पतली और उदर में डंक तथा उदर की निचली सतह पर मोमग्रंथियाँ होती हैं।

श्रमिक मधुमक्खियां अपने मौनगृह के दरारों और उनके जोड़ों को वायुरुद्ध करने के लिए पौधों से गोंद (प्रोपोलिस) ले जाती हैं जिसे खुरचकर एकत्र कर लेते हैं। जिसका उपयोग चर्म रोग के उपचार में किया जाता है। एपिस मोलाफेरा प्रजाति के द्वारा ही अधिकतम उत्पादन किया जाता है।

श्रमिक दो वर्ग में बंटे हैं -

i) संग्राहक श्रमिक मधुमक्खी

ii) खोजकर्ता श्रमिक मधुमक्खी

मधुमक्खियों की प्रजातियां- भारतवर्ष में मधुमक्खियों की निम्नलिखित प्रजातियां पायी जाती है।

1) एपिस डोरसेटा (सारंग मधुमक्खी)

2) एपिस सेरेना इंडिका (भारतीय मधुमक्खी)

3) एपिस मेलीफेरा (यूरोपियन मधुमक्खी)

4) एपिस फ्लोरिआ (छोटी मधुमक्खी)

1) एपिस डोरसेटा (सारंग मधुमक्खी)- यह भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों में पायी जाती है व आकार में सबसे बड़ी (लगभग 20 मिमी.) होती है। ये ऊँची इमारतों के छज्जों, पानी की टंकी, वृक्षों की शाखाओं, पहाड़ी भागों पर गुफ़ाओं ऊँची चट्टानों पर अपना स्थान बनाती हैं। ये गुस्सैल/उत्तेजना प्रवृत्तिपूर्ण होती है एवं छेड़ने पर शीघ्र ही क्रोधित हो जाती है तथा मनुष्यों या पालतू जानवरों पर बहुत ही तेजी से आक्रमण करती हैं। कभी-कभी झुंड में एक साथ मिलकर आक्रमण कर डंक मारती हैं, जिसके परिणामस्वरूप विपरीत परिस्थितियों में मृत्यु तक हो जाती है। ये प्रवासिनी प्रवृत्ति की होती हैं। इनके छत्ते का आकार कभी-कभी एक मीटर लम्बा होता है, एक वर्ष में इनके एक छत्ते से औसतन 15-40 किग्रा. शहद प्राप्त होता है। सामान्यतः इनको पालना कठिन होता है।

2) एपिस सेरेना इंडिका (भारतीय मधुमक्खी)- यह भारतीय मूल की प्रजाति है तथा यह भी भारतवर्ष के सम्पूर्ण क्षेत्रों में पायी जाती है। इनका स्वभाव सारंग मधुमक्खी से भिन्न/ विपरीत होता है। यह शान्त स्वभाव की होती है तथा इनका पालन आसानी से किया जा सकता है। इनका शारीरिक आकार लगभग 15 मिमी. होता है। ये मधुमक्खियाँ अंधेरे में रहना तथा काम करना अधिक पसंद करती हैं।

इनके छत्ते खोखले पेड़ों के तनों, पत्ती, झाडियों तथा शाखाओं एवं घरों की छतों आदि के नीचे मिलता है जो आकार में सारंग मधुमक्खी से छोटी होती है, यह अपने पुराने छत्ते को छोड़कर बहुत ही कम इधर-उधर जाती हैं। प्रत्येक छत्ता समूह से एक वर्ष में 3-6 किग्रा शहद प्राप्त होता है।

3) एपिस मेलीफेरा (यूरोपियन मधुमक्खी)- ये आकार एवं आकृति भारतीय मौना (एपिस इंडिका) से मिलती जुलती होती हैं, साथ ही साथ इस मधुमक्खी प्रजाति में रानी के अंडे देने की क्षमता बहुत ही अधिक होती है। यह प्रजाति, अन्य मधुमक्खियों की अपेक्षा शांत स्वभाव की होती है। इस प्रजाति से उत्पन्न शहद अच्छी किस्म का तथा भारतीय मौना से लगभग 9-10 गुना अधिक होता है। दो खण्ड के बक्से से लगभग 50-80 किग्रा शहद एक वर्ष में प्राप्त किया जा सकता है तथा साथ ही रानी मक्खी के अधिक अंडे देने से मधुमक्खियों

के वंश में भी अधिक वृद्धि होती है। इस प्रजाति को शहद उत्पादन की दृष्टि से सर्वोत्तम माना गया है।

4) एपिस फ्लोरिआ (छोटीमधुमक्खी)- यह सबसे छोटी मधुमक्खी होती है तथा भारत के सभी क्षेत्रों में पायी जाती है। ये अंधेरे में रहना पसंद नहीं करती है। इसलिये ये अपना छत्ता खुले मैदानी स्थानों पर, झाड़ियों/ छतों के कोनों पर बनाती हैं, जो आकार में बहुत ही छोटे होते हैं। एक बार में एक छत्ते से केवल केवल 250 ग्राम शहद ही प्राप्त होता है। यह प्रजाति ठण्ड सहन नहीं कर सकती, इसी कारण यह पहाड़ी भाागों पर नहीं मिलती है।

मौनपालन/ मधुमक्खी पालन बॉक्स :

1. वर्ष 1789 ई. में स्विटजरलैंड के वैज्ञानिक फ्रांसिस ह्यूबर ने पहले लकड़ी के पेटी (मौनगृह) में मौनापालन का प्रयास किया, इसके अंदर उसने लकड़ी के फ्रेम को बनाया जो किताब के पन्नों की तरह एक दूसरे से जुड़े थे।

2. वर्ष 1851 ई. में अमेरिकन पादरी लैंगस्ट्राथ के द्वारा ये पता लगाया गया कि मधुमक्खियाँ अपने छत्ते के बीच 8 मिमी की जगह छोड़ती है, इसी आधार पर उन्होंने एक - दूसरे से युक्त फ्रेम बनाये जिसमे मधुमक्खियाँ छत्ते बना सके।

3. वर्ष 1857 ई. में मेहरिंन ने मोमी छत्ता बनाया, यह मधुमक्खी की मोम से बनी सीट होती है जिसके ऊपर छत्ते की कोठरियों की माप के उभार बने होते हैं, जिस पर मधुमक्खियां छत्ते बनाती हैं।

4. वर्ष 1865 ई. ऑस्ट्रिया के मेजर डी हुरस्का के द्वारा मधु निष्कासन यंत्र बनाया गया। इस यंत्र में शहद से भरे फ्रेम को डालकर उनसे शहद को निकाला जाता है। इसमें फ्रेम में छत्ते एकदम सुरक्षित रहते हैं, जिसको पुनः मौनगृह में रखा जा सकता है।

5. सन् 1882 ई. में कौलिन के द्वारा रानी अवरोधक जाली का निर्माण किया गया ।

आधुनिक मौनगृह / मौनापालन बॉक्स : मौनापालन/ मधुमक्खी पालन करने के लिए विभिन्न प्रकार के छत्तों का उपयोग किया जाता है। ये लकडी के बने संदूक जैसे होते हैं, जिसमे दो खण्ड होते हैं ऊपर 1/4 भाग मधुखण्ड तथा निचला 3/4 भाग शिशुखंड होता है।

दोनों के बीच में एक जाली लगी होती है। जिससे श्रमिक मक्खी एक खंड से दूसरे खंड में आसानी से आ जा सकते हैं, परन्तु रानी शारीरिक आकार में बड़ी होने के कारण ऊपर नहीं जा सकती है। इस जाली को क्वीन एक्सक्लूडर कहते हैं।

लकड़ी का यह बॉक्स चारो तरफ से बन्द रहता है केवल निचले तल पर एक छोटा सा छिद्र होता है, जिससे एक- एक करके मधुमक्खी अंदर-बाहर आती जाती रहती है।

मौनगृह के निचले वाले शिशुखंड में 4 या 5 इंच की दूरी पर समानांतर खड़ी दिशा में लकड़ी के फ्रेम लटका दिये जाते हैं। इनका ऊपरी भाग जाली से सटा हुआ एवं निचला भाग बॉक्स के तल से ऊपर लगा रहता है।

प्रत्येक दो फ्रेमो के बीच तार बंधे रहते हैं जिसमे कॉम्ब फाउंडेशन लगा देते हैं। यह कॉम्ब फाउंडेशन मोम से बना हुआ षष्टभुजाकार छोटे-छोटे कोष होते हैं।

भारतवर्ष में दो प्रकार के छत्ते अत्यधिक प्रचलित हैं-

i) न्यूटन बॉक्स - 20.2 सेमी × 1.40 सेमी

ii) घोष का बॉक्स -36.5 सेमी × 21.6 सेमी

इसके अलावा कुछ अन्य बॉक्सों के आकार निम्नलिखित हैं-

i) लॉन्गास्ट्रोथ का बॉक्स (अमेरिकन मौनगृह)- 42.2 सेमी x 31.1 सेमी

ii) रशियन मौनगृह- 47 सेमी x 28.6 सेमी

iii) थॉम्पसन मौनगृह- 30.5 सेमी x 15.2 सेमी

अन्य उपयोगी अवयव (यन्त्र)- षष्टभुजाकार कोष, धूम्रण यन्त्र, दस्ताने, स्क्रेपर, जाली, मधु निष्कासन उपकरण, चाकू, नकाब (मास्क), रानी कोष्ठ रक्षण यन्त्र, भोजन पात्र, धुआँकश यन्त्र और ब्रुश, मौन पेटिका, टूल (खुरपी) ।

मौनगृह खरीदते समय ध्यान देने योग्य बातेंः-

i) मौनगृह में एक स्वस्थ रानी हो।

ii) मौनगृह मोटी और गंधरहित लकड़ी के बने हों।

iii) नरमक्खियों की संख्या कम होनी चाहिए, क्योंकि ये पराग को कम करते हैं तथा आहार ज्यादा ग्रहण करते हैं।

iv) मौनगृह में पर्याप्त मात्रा में मकरंद और पराग हो।

v) मौनगृह में 5-6 फ्रेम मधुमक्खी, अंडा, लार्वा व प्यूपा से भरी हो।

vi) बॉक्सों के स्थानांतरण का कार्य रात में ही करना चाहिए।

मौनगृह का उचित प्रबंधनः-

i) बरसात के समय / मौसम में मौनगृह को ऊँचे और खुले स्थान में रखें।

ii) प्रत्येक बॉक्स को छायादार स्थान पर ही रखें।

iii) मौनपालन का स्थान खरपतवार मुक्त रखें या समय-समय पर घास / खरपतवार इत्यादि को साफ करते रहना चाहिए।

iv) मौनबॉक्स के अंदर खाली मोम वाली फ्रेमो को निकाल कर अलग धूप दिखाते रहने से मोमी पतंगों से इनको बचाया जा सकता है।

v) मधुमक्खियों को मोमी पतंगा और चीटियों से बचाकर रखें या इनसे बचाव के लिए मौनबॉक्स के नीचे स्टैंड के पास कटोरियों में पानी भर कर रख सकते हैं।

विभिन्न महीनों में मधुमक्खियों के भोजन स्त्रोत :-

जनवरी : टमाटर, सरसों, तोरियाँ, ,मटर, राजमा, कुसुम,चना, अमरुद, यूकेलिप्टस, कटहल, अनार, इत्यादि।

फरवरी : अमरुद, कटहल, शीशम, यूकेलिप्टस, प्याज, धनिया, सरसों, तोरियाँ, कुसुम, चना ,मटर, राजमा, अनार, गेंहूँ, अलसी इत्यादि।

मार्च : अरहर, मेथी, मटर, भिन्डी, धनिया, आंवला, नींबू, जंगली जलेबी, शीशम, यूकेलिप्टस, नीम, आमकुसुम, सूर्यमुखी, अलसी, बरसीम इत्यादि।

अप्रैल : मिर्च,सेम,तरबूज, खरबूज, करेला, लौकी, बरसीम,, सूरजमुखी भिन्डी,अरण्डी,रामतिल,जामुन,अमलतास,नीम, इत्यादि।

मई : करेला, लौकी, इमली, कद्दू, तिल, मक्का, तरबूज, खरबूज, खीरा,सूरजमुखी, बरसीम, करंज, अर्जुन, अमलतास इत्यादि।

जून : करेला, लौकी,तिल, मक्का, सूरजमुखी,इमली, कद्दू,तरबूज, खरबूज, खीरा, बबूल, अर्जुन, अमलतास इत्यादि।

जुलाई : करेला, खीरा, ज्वार , लौकी, भिन्डी, मक्का, बाजरा,पपीता इत्यादि।

अगस्त : धान, टमाटर, बबुल, ज्वार, मक्का, सोयाबीन, मूँग,आंवला, कचनार, खीरा, भिन्डी, पपीता इत्यादि।

सितम्बर : रामतिल, टमाटर, बरबटी, अरहर, सोयाबीन, मुंग, धान, भिन्डी,बाजारा, सनई, कचनार, इत्यादि।

अक्टूबर : सनई, अरहर, धान, अरण्डी, रामतिल, यूकेलिप्टस, कचनार, बेर, बबूल इत्यादि।

नवम्बर : अरहर, अमरुद,यूकेलिप्टस, बोटलब्रश सहजन, बेर, सरसों तोरियां, मटर, इत्यादि।

दिसम्बर : मटर, यूकेलिप्टस, अमरुद तोरियाँ, राइ, चना, सरसों, इत्यादि।

निष्कर्ष

मधुमक्खी पालन एक ऐसा व्यवसाय है जिसमे अनुत्पादक स्थान का उपयोग करते हुए भी कम समय में, कम लागत लगाकर ज्यादा मुनाफा ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक शोधों में भी यह सिद्ध हुआ है कि मौनापालन के समीपवर्ती फसल क्षेत्र के कृषि उत्पादन में परस्पर वृद्धि होती है।

❖❖

ग्लैडियोलस की वैज्ञानिक खेती

डॉ. सुनील चन्द्रा

विभागाध्यक्ष

के. पी. उच्च शिक्षा संस्थान, झलवा, प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : samarpan031@gmail.com

प्रस्तावना

ग्लैडियोलस (कॉर्न सीसी या स्वोर्ड लीली) सबसे प्रमुख व्यावसायिक फूलों में से एक है जिसकी सुन्दरता उसका शानदार स्पाईक (पुष्प डंठल) है जो लुभावने रंग, आकर्षक पुष्प विन्यास एवं लम्बी पुष्प जीवंतता के साथ होती है। व्यावसायिक माँग के कारण इस फूल को बड़े पैमाने पर उगाया जाता है, परन्तु उद्यान को सुन्दर बनाने के लिए क्यारियों एवं गमलों में भी इसे लगाया जाता है। कटे फूल को गुलदस्ता, मेज सज्जा एवं भीतरी सज्जा के लिए मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है।

ग्लैडियोलस की मुख्य रूप से दो तरह की किस्में होती है, एक बड़े फूलों वाली (Large flowered) तथा दूसरी छोटे फूलों वाली बटर फ्लाई (Butter fly or Miniature) बहुत से किस्मों में फूल के बीच का भाग जिसे ब्लाच (Blotch) कहते हैं दूसरे रंग का होता है जिससे इसकी सुन्दरता बढ़ जाती है।

व्यावसायिक रूप से उत्पादन हेतु-फ्रेंडशिप व्हाइट, फ्रेंडशिप पिंक, वाटरमेलन पिंक, लिली आसकर, जैकसन, विस-विस, यूरोवीजन आदि किस्में हैं।

भारत में विकसित प्रमुख किस्में-आरती, अप्सरा, अग्नि रेखा, सपना, शोभा, सुचित्रा, मोहनी, मनोहर, मयूर, मुक्ता, मनीषा, मनहार है।

प्रवर्धन-ग्लैडियोलस का प्रवर्धन कन्द (Corm) से होता है। कन्द लगभग 3-5 सेमीं0 व्यास का होना चाहिए। लट्टनुमा आकार वाले कन्द चिपटे कन्द की अपेक्षा उत्तम पाया गया है एक कन्द से कई छोटे-छोटे कन्द तैयार होते हैं परन्तु ये इतने छोटे होते हैं जो कि रोपने योग्य नहीं रहते है। अतः इन्हें 2-3 बार रोपाई करनी पड़ती है उसके बाद ही सही आकार के कन्द प्राप्त हो पाते हैं।

कन्द रोपन का उपयुक्त समय सितम्बर एवं अक्टूबर माह होता है। खुदाई के बाद कन्द लगभग तीन माह तक सुषुप्तावस्था में रहते हैं। अतः सुषुप्तावस्था में इनकी रोपाई न करें अन्यथा इनका अंकुरण नहीं होगा। रोपाई करने के पहले भूरे रंग के बाहरी छिलके को हटाकर 0.2 प्रतिशत कैप्टान या 0.1 प्रतिशत बेनलेट के घोल में 30 मिनट तक उपचारित करने के बाद ही कन्दों की रोपाई करनी चाहिए। इसकी इच्छी उपज प्राप्त करने के लिये कन्दों को अंकुरित करके रोपाई करनी चाहिये तथा कन्द को अंधेरे एंव गर्म स्थान पर बालू भरे ट्रे में लगाकर रखना चाहिए। बालू को नम बनाये रखनी चाहिये तथा ट्रे को पालीथीन से ढंक देना चाहिये। व्यावसायिक खेती हेतु कन्दों को 20-30 x 5-20 या 25 x 15 सेमीं0 की दूरी पर 5-10 सेमी0 गहराई पर रोपाई करें। प्रदर्शनी हेतु स्पाइक तैयार करने के लिए बड़े आकार के कन्द (5.0-7.5 सेमी0 व्यास के) को 30 x 20 सेमीं0 पर रोपना चाहिए। यदि कन्द की रोपाई 30-20 दिन के अन्तराल पर कई बार में की जाय तो स्पाइक लगातार अधिक समय तक मिलती रहती है।

खाद एवं उर्वरकः ग्लैडियोलस की अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु प्रति वर्ग मीटर भूमि में 2.0-2.5 किग्रा0 कम्पोस्ट, 15-30 ग्राम नाइट्रोजन, 30-20 ग्राम फॉस्फोरस व 30-20ग्राम पोटाश देना चाहिए। कम्पोस्ट, फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की चौथाई मात्रा रोपाई के समय देनी चाहिए। जबकि शेष नाइट्रोजन की मात्रा को तीन बार में बराबर-बराबर मात्रा में प्रथम पौधे में 3-4 पत्तियाँ आने पर, दूसरी बार स्पाइक निकलते समय तथा अन्तिम बार जब फूल निकलना समाप्त हो जाय तब देना चाहिये। अन्तिम बार नाइट्रोजन की मात्रा कन्दों की सही वृद्धि के लिए देते है।

अन्य क्रियाएँ-इसकी प्रथम तीन चार पत्ती की अवस्था पर एवं द्वितीय स्पाइक निकलने की अवस्था पर इसकी जड़ पर मिट्टी चढ़ानी चाहिये एवं आवश्यकतानुसार इसकी सिंचाई करनी चाहिए।

पौधे को सहारा देना-जब स्पाइक (फूल की डंढल) निकलने लगे उसी समय बांस की फट्टी को इस प्रकार लगाना चाहिये कि पौधे से स्पाइक न टेढ़ी-मेढ़ी हो सके न ही जमीन की तरफ झुक या गिर सके।

स्पाइक की कटाई-सबसे नीचे वाले फूल का रंग दिखाई देते ही तेज चाकू या सिकैटियर की मदद से सफाइक काटने के तुरन्त वाद पानीयुक्त बाल्टी में स्पाइक को रखें।

फूलदान के स्पाइक सजाना-फूल दान को साफ करने के बाद उसमें स्वच्छ पानी भरकर स्पाइक को सजायें। दूसरे दिन से रोजाना या एक दिन के अन्तराल पर स्पाइक को नीचे से 1.5 सेमी0. काटते रहें तथा पानी बदलकर साफ पानी भर दें अनुकूल दशा मे स्पाइक के सभी फूल धीरे-धीरे खिल जाते है तथा कम से कम एक हफ्ते तक आसानी से फूलदान में रखा जा सकता है।

कन्द की खुदाई एवं भंडारण-यदि पौधे से स्पाइक को नहीं काटा जाता है और उसे क्यारी या गमले में ही सुन्दरता प्रदान करने के लिए पूर्णतः खिलने देते हैं तो यह ध्यान रखें कि पौधे पर बीज न बनने पाये अन्यथा कन्द को नुकसान पहुँचता है। जब पत्ती पीले या भूरे रंग की हो जाय एवं सूखना शुरू करे तो कन्द एवं कारमेल को खुरपी की सहायता से खुदाई करें। कन्द को खोदने के बाद 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन/कैप्टान या 0.1 प्रतिशत बेनलेट घोल से 30 मिनट तक उपचारित करके छायादार स्थान पर 2-3 सप्ताह तक सुखाकर लकड़ी की पेटी या जूट के बैग में रखकर हवादार एवं ठंड कमरे में भंडारित करें। यदि कोल्ड स्टोरेज में 40^0 सेंटीग्रेड पर भंडारित किया जाय तो यह सर्वोत्तम होगा।

कीड़े एवं बीमारियाँ-ग्लैडियोलस को थ्रिप्स कीड़ा से ज्यादा नुकसान होता है इसके लिए 0.3 प्रतिशत सेविन या 0.1 प्रतिशत मैथाथियान या 0.15 प्रतिशत नुवान के घोल का छिड़काव 15-20 दिन के अन्तराल पर करें। भंडारण के समय भी कभी-कभी ये कीड़े कन्द को क्षति पहुँचाते हैं। अतः भंडारण के समय भी आवश्यकतानुसार 2-3 छिड़काव करना लाभदायक होता है।

ग्लैडियोलस में मुख्य रूप से भूमि जनित दो बीमारियाँ स्ट्रोमेटीनिया ऑक्सीस्पोरम और फ्यूजेरियम ग्लैडियोली का साधारणतया प्रभाव पाया जाता है। इसके प्रभाव से कन्द सड़ जाते हैं। इस बीमारी से बचाव के लिए बीमारी रहित कन्द का चुनाव करें तथा कन्द को रोपने के पहले 0.2 प्रतिशत कैप्टान से या गर्म पानी में 48^0 से0 30 मिनट तक उपचारित करना चाहिए।

खड़ी फसल मे बीमारी से बचाव हेतु 0.25 प्रतिशत इण्डोफिल एम-45 का छिड़काव करें।

उपज-उचित फसल प्रबंधन से एक हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 2-2.5 लाख पुष्प डंठल प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त लेख से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग्लैडियोलस वर्तमान समय में बहुत लोकप्रिय फूल है। जिसकी माँग भी आज बाज़ार में बड़ी जोर से बढ़ रही है। यदि किसान इसका उत्पादन बड़े पैमाने पर करते हैं और इसकी थोड़ी देखरेख करते हैं तो किसान अच्छी मात्रा में फूल प्राप्त कर सकते हैं, और अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकते हैं।

❖❖

जैविक विधि द्वारा टमाटर की उन्नत खेती

[1]अनीता केरकेट्टा, एवं [2]विजय बहादुर

[1]उद्यान विभाग शुआट्स, प्रयागराज

[2]उद्यान विभाग शुआट्स, प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : vijaybahadur2007@gmail.com

परिचय - कार्बनिक/ जैविक खेती

देश में हरित क्रांति के पूर्व कृषि व्यवस्था कार्बनिक एवं जैविक पद्धतियो पर आधारित थी परन्तु हरित क्रांति के फलस्वरूप अधिक उपज देने वाजी प्रजातियो के साथ - साथ रासायनिक उर्वरको, कीटनाशको, फफूँदनाशको, खरपतवार नाशको आदि का प्रयोग बेतहाशा प्रारम्भ हो गया। यहाँ तक कि पूर्णतया प्रतिबंधित रसायनो का प्रयोग आज भी किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा, पानी, हवा आदि प्रदूषित हो रही है। रासायनिक उर्वरक के प्रयोग से सब्जियों के उत्पादन में आशातीत सफलता तो मिली परन्तु सब्जियों की गुणवत्ता तथा मिट्टी की उत्पादकता में कमी आयी है। इसका मुख्य कारण जरूरत से ज्यादा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता तथा कार्बनिक खादों का प्रयोग कम होने से पौधों को संतुलित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध नहीं हो पा रहा है।

यह कटु सत्य है कि अन्य कृषि फसलो की तुलना में सब्जियो में कृषि रसायनो का प्रयोग सबसे अधिक मात्रा में किया जा रहा है। पूरे वर्ष सब्जियों की उपलब्धता बनाये रखने के लिए उत्पादको द्वारा बे-मौसिमी सब्जियो की खेती में भी ज्यादा कृषि रसायनो का प्रयोग किया जा रहा है, क्योंकि अगेती व पिछेती सब्जियो की खेती में रोग एवं कीड़ो का प्रकोप ज्यादा रहता है। इतना ही नही ज्यादा समय तक सब्जियों को ताजा एवं उनमें चमक बनाये रखने के लिए भी हानिकारक रसायनो का प्रयोग प्रचलन में है। कार्बनिक ढंग से उत्पादित सब्जियाँ ज्यादा पोषकीय गुणों से भरपूर होती है और उपभोक्ता के लिए ज्यादा सुरक्षित एवं बाजार मूल्य भी ज्यादा मिलता है।

जैविक सब्जी क्या है

"ऐसी सब्जी उपज जो वातावरण के प्रति मित्रवत उत्पादन, प्रबंधन पद्धतियो एवं निर्देशन से प्राप्त होती है, जैविक सब्जी कहलाती है।"

जैविक विधि द्वारा टमाटर की उन्नत खेती से लाभ

विश्व मे भारत सब्जी में उत्पादक दूसरा बड़ा देश है जहाँ लगभग 14.9 लाख मिलियन टन सब्जी की पैदावार प्रति वर्ष होती है परन्तु प्रति व्यक्ति इनकी उपलब्धता बहुत कम है। यदि उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी अपनाकर प्रति इकाई सब्जी उत्पादन बढ़ाया जाय तो प्रति व्यक्ति सब्जी की उपलब्धता बढ़ाने के साथ-साथ संतुलित आहार की पूर्ति भी की जा सकती है।

भारतवर्ष में सभी स्थानो पर टमाटर का सब्जियों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। पके हुए टमाटर को सब्जी के अलावा फल की तरह भी प्रयोग किया जाता है। इसकी खेती हर जगह की जाती है। इसमे प्रमुख विटामिन 'ए', विटामिन 'सी' मैलिक एसिड, साइट्रिक एसिड, पोटेशियम, लोहा एवं फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। इसका उपभोग सलाद के रूप में भी किया जाता है तथा इसके अलावा इससे टोमेटो कैचप, सॉस इत्यादि चीजो को बनाने में भी प्रयोग किया जाता है।

बहु उपयोगी तथा गुणवत्ता से भरपूर टमाटर की कार्बनिक विधि द्वारा उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिये। जिससे रसायनिक रहित सब्जियों उपभोक्ता को मिल सके और उसका उचित मूल्य किसानो के परिवार के आमदनी को बढ़ा सके।

टमाटर वैज्ञानिक रूप से सोलेनम एस्कुलेन्टम मिलर, सोलेनेसी कुल के अन्तर्गत आता है और इसकी गुणसूत्र संख्या $2n = 24$ होती है। टमाटर एक महत्वपूर्ण सब्जी है, जिसका सब्जी जगत में आलू तथा शकरकन्द के बाद तीसरा स्थान आता है। डिब्बो में भरने वाली सब्जियो में टमाटर का स्थान प्रथम है। भारत में इसकी खेती लगभग 4.86 लाख हे0 भूमि में की जाती है, जिससे लगभग 74.2 लाख टन टमाटर का वार्षिक उत्पादन होता है। जिनमें मुख्यतः उ0 प्र0, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, पंजाब बिहार और गुजरात सबसे अग्रणी है। इसकी खेती आय का एक अच्छा स्रोत है। मुख्यतया गर्मियो के मौसम में या अभाव के समय टमाटर ऊँचे

दाम पर बिकता है। इसकी अगेती व देर से फसल लेने में अधिक लाभ होता है।

पोषकीय महत्व

टमाटर के फल स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत लाभदायक है, क्योंकि इसमें पर्याप्त मात्रा में विटामिन ए 900 अ0 ई0, विटामिन सी 27 मि0 ग्राम विटामिन बी खनिज लवण, शर्करा तथा प्रोटीन भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। टमाटर में बीटा कैरोटिन कम होता है, जबकि लाइकोपीन जो एक प्रमुख एन्टीआक्सीडेन्ट व एन्टी कैंसर गुण रखता है अधिक होता है। टमाटर मे लाइकोपीन 8.8 - 42.0 मिली ग्राम प्रति 100 ग्राम फल भार में होता है। (राव एवं सत , 2007)

जलवायु एवं मृदा

टमाटर उष्ण कटिबन्धीय जलवायु की फसल है जो सामान्यतः 10 - 30 डिग्री सेलिसयस तापक्रम पर उगता है। यह फसल पाले के साथ - साथ निम्न तापक्रम को सहन नहीं कर सकती है। अगर उच्च तापक्रम, निम्न आर्द्रता एवं सूखी हवा बनी रहे तो अपरिपक्व फूल तेंजी से गिरने लगते है, जिससे कम फल मिलते है। अधिक और निम्न तापक्रम दोनो का फल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलो में अच्छी प्रकार लाल रंग विकसित होने के लिए 15 - 25 डिग्री सेल्सियस तापक्रम उत्तम होता है। टमाटर सभी प्रकार के मिट्टी में अच्छी तरह से उगायी जा सकती है लेकिन अधिक उपज के लिए दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। मृदा का पी. एच. मान औसत 4.5 - 7 होना चाहिए।

किस्में-

आनुवांशिकता के आधार पर प्रजातियों को शुद्ध वंशक्रमें तथा शंकर पौध बढ़वार के अनुसार सीमित, मध्यम और असीमित समूहों मे बाँटा जा सकता है-

1 असीमित बढ़वार-इन किस्मों के पौधों की बढ़वार रुकती नहीं तथा पौधे बड़े होते हैं। दो गाँठों के बीच (फूलों के बीच) गुच्छे कम निकलते हैं, लेकिन फूल व फल अधिक समय तक आते रहते हैं। इन किस्मों के फल बड़े होते हैं तथा इनमें फल सड़न की बीमारी कम लगती है।

2 सीमित बढ़वार-सीमित बढवार वाली किस्मों में पौधे की वृद्धि फूल की कली के रूप में समाप्त होती है। सीमित किस्मों में कटाई-छटाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः इसे स्व-कृन्तन किस्म भी कहते है। इन किस्मों के पौधे बौने होते हैं।

उन्नत शील किस्में

1 काशी विशेष-इस प्रजाति को वर्ष 2006 में उत्ताराखंड, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचलप्रदेश, उत्तरप्रदेश,छत्तीसगढ़ बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल राज्य में व्यवसायिक खेती के लिए अनुमोदित किया गया है। इसमें टमाटर का पर्ण मरोड़ बीमारी नहीं लगती है। इसकी औसत उपज 42.5 टन प्रति हेक्टेयर है।

2. पूसा अर्ली ड्वार्फ- यह सीमित बढ़वार वाली अगेती किस्म है। इसकी औसत उपज 35.0 से 37.5 टन प्रति हेक्टेयर तक हो जाती है। इसको दोनों मौसमों (शरद एवं वसंत) में उगाया जा सकता है।

3. पूसा सदाबहार-इस किस्म के पौधे सीमित बढ़वार वाले होते हैं। पौधों पर ज्यादा फल लगते हैं, जो अण्डाकार से गोलाकार होते हैं। फल छोटे, चिकने तथा आकर्षक होते हैं। इसकी औसत उपज क्षमता 25.0-35.0 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

4. हिसार अरुण- 7-इस किस्म को उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में अगेती तथा मुख्य फसल के रुप में बहुतायत से उगाया जाता है। इस किस्म से औसत उपज 35.0 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

5 हिसार ललितः- यह किस्म जड़ गाँठ सूत्रकृमी के प्रतिसहिष्णु होते है। इसके फल मध्यम आकार के गोल व लाल होते हैं। इसकी औसत उपज 30.0 प्रतिहेक्टेयर है।

6 पंजाब छुहाराः-इसके फल मध्यम आकार वाले नासपाती जैसे होते हैं तथा प्रति पौधा फल अधिक लगते हैं। फलों का छिलका मोटा होता है, इसलिए इसे दूर बाजार में भेजा जा सकता है। यह पिछेती पकने वाली किस्म है।इसकी औसत उपज 25.0-28.0 प्रति हेक्टेयर होती है।

7. पंत टमाटर- 1-यह अधिक पैदावार देने वाली किस्म गर्मी तथा सर्दी मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त है। यह किस्म टमाटर मोजेक विषाणु के प्रति संवेदनशील है। इसकी औसत ऊपज 28.0-32.0 टन प्रति हेक्टेयर है।

1. भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान वाराणसी द्वारा विकसित किस्में- इस संस्था द्वारा काशी अनुपम काशी अमृत, काशी हेमन्त, काशी शरद को विकसित किया गया है।

2 भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,नई दिल्ली, द्वारा विकसित किस्में-इस संस्था द्वारा पूसा रूबी, पूसा रेड प्लम, पूसा सेलेक्शन- 120, एस0एल0- 152, बेस्ट ऑफ ऑल पूसा गौरव, पूसा शीतल, पूसा उपहार, पूसा संकर-1, पूसा संकर-2, पूसा संकर-4, पूसा दिव्या को विकसित किया गया है।

3. चौधरीचरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार द्वारा विकसित किस्में- इस संस्था द्वारा एच0 एस0- 101, एच0 एस0- 102 ,एच0 एस0- 110, हिसारलालिमा, , हिसार, अनमोल सेलेक्शन- 32, हिसारकलिंगा को विकसित किया गया है।

4. पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित किस्में-इस संस्था द्वारा पंजाब केशरी, एस- 12, पंजाब उपमा, टी0एच0 3212, टी0 एच 0802, टी0 एच 01 को विकसित किया गया है।

5. गोविंदबल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा विकसित किस्मे-इस संस्था द्वारा पंतबहार पंत टमाटर-2, पंत टी-3 को विकसित किया गया है।

6. चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश) से विकसित किस्में- इस संस्था द्वारा कल्याणपुर अंगूर लता, के0 एस02 को विकसित किया गया है।

7. भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान बेंगलुरु कर्नाटक द्वारा विकसित किस्में-इस संस्था द्वारा अर्का विकास, अर्का सौरभ, अर्का आभा, अर्का आलोक, अर्का मेघाली, अर्का विशाल, अर्का वरदान, अर्का आहूती, अर्का अभिजित, अर्का श्रेष्ठ को विकसित किया गया है।

8. नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) से विकसित-इस संस्था द्वारा किस्मे-एन0 डी0 टी0-120, एन0 डी0 टी0-108 को विकसित किया गया है।

9. यशवन्त सिंह परमार उद्यान एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन हिमाचल प्रदेश द्वारा विकसित किस्में-इस संस्था द्वारा सोलन गोला, सोलन बज्र या यशवन्त, यशवन्त (ए-2), सोलन शगुन, पालम पिंक, पालम प्राईड को विकसित किया गया है।

10. व्यक्तिगत बीज कंपनियों द्वारा विकसित किस्में- अविनाश-इस संस्था द्वारा 2, रुपाली, नवीन, रश्मि, वैशाली को विकसित किया गया है।

11. अन्य शोध संस्थानों से विकसित किस्में-इस संस्था द्वारा जवाहर जवाहर-99, स्वर्ण नवीन, स्वर्ण लालीमा, ए0 आर0 टी0 एच0-3 को विकसित किया गया है।

बीज की मात्रा - एक हे0 जमीन से टमाटर की पौध लगाने के लिए लगभग 350 - 450 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। लेकिन वैज्ञानिक तरीके से खेती करने के लिए मात्र 200 - 250 बीज ग्राम पर्याप्त है।

पौध तैयार करना - टमाटर के पौध दो मौसमो में वर्षा एवं शरद ऋतु में तैयार किये जाते है। एक हे0 पौध रोपण के लिए लगभग 100 - 125 वर्ग मी0 क्षेत्रफल में पौधशाला लगाने की आवश्यकता पड़ती है। जिस भूमि में पौधशाला बनानी हो उसकी कई बार अच्छी प्रकार जुताई करके खतपतवार निकाल दिया जाता है। चयनित जगह को गर्मी में सौरीकरण (Solarization) आवश्यक है। जैविक विधि द्वारा खेत तैयार करने के लिए गोबर की अच्छी प्रकार सड़ी खाद मिलाकर सिंचाई कर दी जाती है। जब मिट्टी गुड़ाई के योग्य हो जाये तब गुड़ाई करके भुरभुरी बना ली जाती है। इस प्रकार तैयार भूमि में 15 - 20 से0 मी0 ऊँची क्यारियाँ बना दी जाती है। इन क्यारियों की ल0 5 मी0 तथा चौ0 1 मी0 रखी जाती है जिससे आसानी से सिंचाई व निकाई की जा सकें। क्यारियों में 1.5 से0 मी0 की दूरी पर बीच लगाना चाहिए। इसके बाद गोबर की अच्छी सड़ी खाद या वर्मी कम्पोस्ट को भूरभूरी करके उसकी एक पतली तह से बीज को ढक कर हर ओर से सिंचाई कर दी जाती है। जून - जुलाई में पौधो को अधिक तापक्रम एवं धूप से बचाने के लिए पौधशाला को दिन में पुआल से ढक कर छाया की जाती है तथा रात में हटा दिया जाता है। वर्षा के प्रभाव से बचने के लिए पॉलीथीन की चादर से ढकना चाहिए लेकिन ध्यान रहे कि पौधो की ज्यादा गर्मी न लगे। पौधे उगते समय सिंचाई पर अधिक ध्यान देना चाहिए, क्योंकि नमी की कमी होने तथा अधिक गर्मी पडने पर पौधे सूखने लगते है। बीज को बोने से पूर्व 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से थाईरम

पौध की रोपण का समय, विधि एवं अन्तरण

पौध तैयार करने का समय	रोपण का समय	फल मिलने का समय
जून - जुलाई	जुलाई - अगस्त	सितम्बर - अक्टूबर
नवम्बर - दिसम्बर	जनवरी - फरवरी	मार्च - अप्रैल

या कैप्टान से उपचारित कर लेते हैं।

रोपाई-पौधे को उखाड़ने से पूर्व पौधशाला की हल्की सिंचाई करनी चाहिए ताकि पौधे जड़ सहित सुगमता से उखड़ सकें। पौध की रोपाई तैयार खेत में पंक्तियों में की जाती है।

बैनी बढ़वार-

पौधो की आपसी दूरी 45 - 50 से0मी0

कतार से कतार की दूरी 60 - 75 से0मी0

ऊँची बढ़वार वाली किस्मों में पौधो एवं कतार की दूरी 90 × 30 से0मी0 रखी जाती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

जैविक खाद एवं उर्वरक-

टमाटर की फसल में पोषक तत्वों की उचित मात्रा देने से अधिक पैदावार मिलती है। इन पोषक तत्वों में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश अधिक महत्वपूर्ण है। इनकी प्रयोग मात्रा, स्थान तथा भूमि में इन तत्वो की, उपलब्ध मात्रा के उपर निर्भर करती है।

30 - 35 टन गोबर की सडी खाद प्रति0 हे0

120 : 56 : 50 किग्रा नाइट्रोजन : फास्फोरस एवं पोटाश

घरों में कोयला व लकड़ी जलाकर खाना बनाने से जो राख मिलती है वह जैविक खेती में पौधों के विकास के लिए उपयोगी होता है। इसमे सबसे ज्यादा पोटाश तत्व पाया जाता है, जिससे पौधों का विकास ज्यादा होता है और पौधों पर विकसित हो रहे फूलों व फलों का रंग चमकदार करता है।

गोबर की खाद ना केवल मृदा संरचना व जल धारण क्षमता में वृद्धि नहीं करती बल्कि जमीन के अंदर रहने वाले जीवो को भोजन व संरक्षण प्रदान करता है।

वर्मीकम्पोस्ट में ज्यादा पोषक तत्व पाया जाता है, जो केंचुओ से सड़कर 6 - 7 महीने में तैयार होता है। यह मृदा ताप क्रम नियंत्रित करता है।

ध्यान रहे कि जैविक खेती में केवल जैविक खादों द्वारा पौधो को पोषक तत्व प्रदान की जाये।

पौध लगाने के उपरांत की जानी वाली सस्य क्रियाएँ-

1. सिचांई जल प्रबंधन - सिंचाई की मात्रा मौसम, भूमि तथा पौधो की अवस्था के ऊपर निर्भर करती है। टमाटर को अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई पौध लगाने के तुरन्त बाद की जाती है। सर्दियों में 10 - 15 दिन और गर्मियों में 5 - 6 के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

2. खरपतवार प्रबंधन - टमाटर के खेत से खरपतवार निकालना आवश्यक है क्योंकि इनके रहने से अनेक कीड़ो तथा बीमारियों का प्रकोप फसल पर होने की सम्भावना होती है। जिससे पैदावार में कमी हो जाती है। ध्यान रहे कि कार्बनिक विधि में रसायनिक दवाओ का प्रयोग न के बराबर होना चाहिए और खरपतवार की हाथ से हल्की निकाई करके निकालते है।

3. जैविक पलवार-इसके अन्तर्गत सामान्यतः भूसा (गेहूं, धान, मटर, सरसों आदि) पुआल (धान), पत्ती (आम, नीम, महुआ, पीपल), घास (जिसमें बीज न हो), हरी वनस्पतियां (अनुपयोगी) लकड़ी का बुरादा, घरों से निकली राख, गोबर की खाद, कम्पोस्ट, भूसा, कोकोपिट आते हैं जिनका उपयोग कर बड़े पैमाने पर कार्बनिक उपज प्राप्त कर सकते हैं।

4. गुड़ाई एवं मिट्टी चढ़ाना-टमाटर की फसल की प्रारम्भिक अवस्था में घास निकालने के साथ - साथ गुड़ाई कर दी जाती है। गुड़ाई कम से कम 2 - 3 बार की जाती है। प्रारम्भ की 2 गुड़ाई करने के बाद पौधों के तनों पर हल्की मिट्टी चढ़ा दी जाती है, जिससे पौधे मजबूती के साथ खड़े हो सके।

5. पौधो को सहारा देना-पौधों को सहारा देने से फल, मिट्टी व पानी के सम्पर्क में नही आते, जिससे पौध सड़न रोग से बचे रहते है। यही नहीं पोधों को सहारा देने से उत्पादन

में भी वृद्धि होती है और खेत में 50.0 प्रतिशत ज्यादा पौध रोपण की जा सकती है। सहारा देने के लिए 1.0 मीटर लम्बी व 2.5 सेन्टी मीटर मोटी लकड़ियों या बाँस के टुकड़ों के टमाटर के पौधों के साथ गाड़कर उन्हे 3 - 4 जगह बाँध देते हैं। असीमित बढ़वार वाली किस्मों को एंगिल आयरन के सहारे तार की मदद से ट्रेलिस (trellis) बनाकर उपर चढ़ाना चाहिए।

फलो की तुड़ाई

फलो को किस अवस्था में तोड़ा जाये, यह बाजार की दूरी एवं उपयोग पर निर्भर करता है। जब फल दूर बाजार में भेजने हों, तब अधपके अर्थात कुछ हरे या पीले फल तोड़ लिए जाते है। इस अवस्था के फल आसानी से पैक करके दूर के बाजार में भेजे जा सकते हैं तथा सड़ते नहीं। जब फल अच्छी तरह पक कर लाल हो जाते हैं, तब फलों की तुड़ाई नजदीक बाजार या घर के प्रयोग के लिए करते हैं। सामान्यतः टमाटर के फल परागण के 50 -60 दिन बाद पक जाते हैं लेकिन तापमान कम होने पर ज्यादा समय लग सकता है।

उपज

टमाटर की पैदावार मौसम, किस्म तथा भूमि के उपर निर्भर करती है। इसकी औसत उपज 25.0 - 30.0 टन प्रति हेक्टेयर होती है। कुछ संकर किस्में 50-80 टन प्रति हेक्टेयर उपज देती हैं।

भण्डारण

हरे परन्तु पूर्ण विकसित टमाटर को 10.0-15.0 डिग्री सेल्सियस पर 30 दिनो तक भण्डारित किया जा सकता है। पके फलों को 4.0 - 5.0 डिग्री सेल्सियस तथा 85-90 प्रतिशत आर्द्रता पर 10 दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है हिमिकरण तापक्रम (0 डिग्री सेल्सियस) पर भण्डारण करने से फल खराब हो जाते है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में टमाटर का सब्जियों में प्रमुख स्थान है। इस प्रकार यदि जैविक विधि द्वारा टमाटर की खेती की जाय तो मृदा के साथ-साथ हमारे स्वास्थ्य के लिये भी अच्छी होगी। यदि किसान टमाटर का जैविक विधि से उत्पादन करते हैं तो रासायनिक रहित सब्जियाँ ग्राहकों को मिलेगी। टमाटर पोषक तत्वों से भरपूर होता है। ऐसे में यदि जैविक विधि द्वारा टमाटर का उत्पादन किया जाय तो उसके पोषक तत्व बराकरार तो रहेंगे साथ ही रासायनिक दवाओं से होने वाले दुष्प्रभावों से हमें छुटकारा मिलेगा।

❖❖

मानव स्वास्थ्य के लिए एक जैविक पोषण वाटिका

सुखलाल वास्केल, डॉ. रोशनलाल राऊत, डॉ. सुनील कुमार जाटव, बी.के. प्रजापति एवं एस.आर. धुवारे
कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : sukhlalwaskel98@gmail.com

परिचय

भारतवर्ष मे फलो, सब्जियो एवं मसालो के पौधो को उगाने की परम्परा बहुत पुरानी है। फल एवं सब्जियाँ हमेशा से हमारी जीवन शैली का एक अभिन्न अंग रही है। विकास की बढ़ती गति के साथ साथ हम इस परम्परा से दूर होते जा रहे है। ग्रामीण इलाको में घरो के आस-पास खाली जगह होते हुये भी, उसका सही उपयोग के बारे मे अनभिज्ञता है। आजकल कृषि में अत्यधिक रसायनो के प्रयोग करने से कई बीमारियाँ फैल रही है। इसलिये मनुष्य को अपने घर के आस-पास खुली स्थान पर अपने परिवार के भरण पोषण के लिये जैविक पोषण वाटिका को लगाना चाहिए।

पोषण वाटिका या रसोई घर बाग या फिर गृह वाटिका उस वाटिका को कहा जाता हैं, जो घर के अगल बगल में घर के आंगन में ऐसी खुली जगह पर होती हैं, जहां पारिवारिक श्रम से परिवार के इस्तेमाल हेतु विभिन्न मौसमों में मौसमी फल तथा विभिन्न सब्जियां उगाई जाती हैं। मानव स्वास्थ्य के लिए सबसे पहले गुणवत्तायुक्त भोजन होना चाहिए जिससे वह स्वस्थ एवं रोगमुक्त रह सकता है। मनुष्य भागदौड़ की जीवन में एक आदर्श भोजन नहीं कर पाता हैं। जिससे एक उम्र के बाद कई बीमारियों का सामना करना पड़ता हैं। इसलिए आदर्श पोषण वाटिका का होना अतिआवश्यक हैं। गृह वाटिका में सब्जी उत्पादन का मुख्य उद्देश्य परिवार को पूरे वर्ष ताजी सब्जियां उपलब्ध कराना होता हैं, सब्जियों के अतिरिक्त इसमें फल व फूल वाले पौधें भी उगाये जाते हैं, इसमें सब्जियों का चयन परिवार के सदस्यों की इच्छानुसार करते हैं। बुवाई मेढ़ बनाकर करते हैं।

किचन गार्डेन

पोषण वाटिका का उद्देश्य

पोषण वाटिका का उद्देश्य रसोई घर के पानी व कूड़ा करकट का इस्तेमाल कर के घर की फल व साग सब्जियों की दैनिक जरूरतों को पूरा करना हैं। आजकल बाजार में बिकने वाली चमकदार फल सब्जियों को रासायनिक उर्वरक प्रयोग करके उगाया जाता हैं। रसायनों का इस्तेमाल खरपतवार, कीड़े व बीमारियों को रोकने के लिए किया जाता हैं। इन रासायनिक दवाओं का कुछ अंश फल सब्जी में बाद तक बना रहता हैं। जिसके कारण उन्हें इस्तेमाल करने वालों में बीमारियों से लड़ने की ताकत कम होती जा रही हैं।

इसके अलावा फलों व सब्जियों के स्वाद में अंतर आ जाता हैं। इसलिए हमें अपने घर के आंगन या आसपास की खाली जगह में छोटी-छोटी क्यारियां बना कर जैविक खादों जैसे वर्मी-कम्पोस्ट का इस्तेमाल कर के रसायन रहित फल सब्जियों को उगाना चाहिए।

स्थान का चयन

इसके लिए स्थान चुनने में ज्यादा परेशानी नहीं होती, क्योंकि अधिकतर ये स्थान घर के पीछे या आसपास ही होते

किचन गार्डेन के लिये जैविक कीटनाशक दवाई

हैं। घर से मिले होने के कारण थोड़ा कम समय मिलने पर भी काम करने में सुविधा रहती हैं। गृह-वाटिका के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए, जहां पानी पर्याप्त मात्रा में मिल सकें। जैसे - नलकूप या कूंए का पानी, स्नान का पानी, रसोई घर में इस्तेमाल किया गया पानी पोषण वाटिका तक पहुंच सकें। वह स्थान खुला हो ताकि उस में सूरज की भरपूर रोशनी आसानी से पहुंच सकें। ऐसा स्थान हो, जो जानवरों से सुरक्षित हो और उस स्थान की मिट्टी उपजाऊ हों।

पोषण वाटिका का आकार

जहां तक पोषण वाटिका के आकार का संबंध हैं, तो वह जमीन की उपलब्धता परिवार के सदस्यों की संख्या और समय की उपलब्धता पर निर्भर होता हैं :

- लगातार फसल चक्र, सघन बागवानी और अंतः फसल खेती को अपनाते हुए एक औसत परिवार जिसमें कुल 5 सदस्य हो, ऐसे परिवार के लिए औसतन 250 वर्ग मीटर जमीन काफी हैं। इसी से अधिकतम पैदावार ले कर पूरे साल अपने परिवार के लिए फल सब्जियों की प्राप्ति की जा सकती हैं।

पोषण वाटिका की बनावट

आदर्श पोषण वाटिका के लिए उपलब्ध 250 वर्ग मीटर क्षेत्र में बहुवर्षीय पौधों को वाटिका के उस तरफ लगाना चाहिए, जिससे उन पौधों की अन्य दूसरे पौधों पर छाया न पड़ सके, साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ये पौधे एकवर्षीय सब्जियों के फसल चक्र और उनके पोषक तत्वों की मात्रा में बाधा न डाल सकें। पूरे क्षेत्र को 8-10 वर्ग मीटर की 15 क्यारियों में विभाजित कर लें।

ध्यान देने योग्य बातें :

वाटिका के चारो तरफ बाड़ का प्रयोग करना चाहिए, जिसमें 3 तरफ गर्मी व वर्षा के समय कद्दूवर्गीय पौधों को चढ़ाना चाहिए तथा बची हुई चौथी तरफ सेम लगानी चाहिए। फसल चक्र व सघन फसल पद्धति को अपनाना चाहिए और 2 क्यारियों के बीच की मेड़ों पर जड़ों वाली सब्जियों को उगना चाहिए।

- रास्ते के एक तरफ टमाटर तथा दूसरी तरफ चौलाई या दूसरी पत्ती वाली सब्जी उगानी चाहिए।
- वाटिका के 2 कोनों पर कचड़े के गड्ढे होने चाहिए, जिन में से एक तरफ वर्मीकम्पोस्ट यूनिट और दूसरी ओर कम्पोस्ट खाद का गड्ढा तैयार किया जाना चाहिए, जिसमें घर का कूड़ाकरकट व फसल अवशेष डाल कर खाद तैयार की जा सकें। इन गड्ढों के ऊपर छाया के लिए सेम जैसी बेल चढ़ा कर छाया बनाए रखनी चाहिये। इससे पोषक तत्वों की कमी भी नहीं होगी तथा गड्ढे भी छिपे रहेंगें।

पोषण वाटिका के लाभ

पोषण वाटिका के निम्नलिखित लाभ है-

- जैविक उत्पाद (रसायन रहित) होने के कारण फल व सब्जियों में काफी मात्रा में पोषक तत्व मौजूद रहते हैं।
- बाजार में फल सब्जियों की कीमत अधिक होती हैं, जिसे न खरीदने से अच्छी खासी बचत होती हैं अपितु परिवार के लिए ताजा फल सब्जियां मिलती रहती हैं।
- वाटिका की सब्जियां बाजार के मुकाबले अच्छे गुणों वाली होती हैं।
- गृह वाटिका लगाकर महिलाएं अपनी व अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत बना सकती हैं।
- पोषण वाटिका से प्राप्त मौसमी फल व सब्जियों को परिरक्षित कर के सालभर इस्तेमाल किया जा सकता हैं।

- यह बच्चों के प्रशिक्षण का भी अच्छा साधन हैं।
- यह मनोरंजन और व्यायाम का भी एक अच्छा साधन हैं।
- गृह वाटिका से घर के चारों ओर खाली भूमि का सदुपयोग हो जाता हैं।

फसल की व्यवस्था

पोषण वाटिका में बोवाई करने से पहले योजना बना लेनाी चाहिए, ताकि पूरे साल फल सब्जियां मिलती रहें। योजना में निम्नलिखित बातों का उल्लेख होना चाहिए।

- क्यारियों की स्थिति।
- उगाई जाने वाली फसलों के नाम व किस्में।
- बुवाई का समय।

सब्जियों का वर्गीकरण

(अ) ऋतुओं के आधार पर वर्गीकरण

- **खरीफ ऋतु की सब्जियां :** ये वर्षा ऋतु (जून-जुलाई) में उगाई जाती हैं जैसे - टमाटर, बैंगन, लौकी, ग्वार, लोबिया, सेम, करेला, अरबी, भिण्डी, मिर्च, कद्दू, टिंडा आदि।
- **रबी ऋतु की सब्जियां :** ये शीत ऋतु (सितम्बर-नवम्बर) में उगाई जाती हैं। जैसे - मटर, आलू, प्याज, लहसुन, गाजर, मूली, शलजम, चुकन्दर, लाल भाजी, मैथी, चौलाई, पालक, धनिया आदि।
- **जायद ऋतु की सब्जियां :** ये सब्जियां ग्रीष्म ऋतु प्रारंभ होने से पहले (फरवरी-मार्च) में बोई जाती हैं जैसे - लौकी, तरबूज, खरबूज, खीरा, तोरई, टिंडा, भिण्डी आदि।

  फलदार पौधे : अमरूद, पपीता, केला, नींबू आदि।

(ब) भोजन के रूप में उपयोग में आने वाले भागों के आधार पर वर्गीकरण

- **पत्तेदार सब्जियां :** पालक, मेथी, बथुआ, चौलाई आदि।
- **कंद वाली सब्जियां :** आलू, अरबी, शकरकंद आदि।
- **शल्क कन्दीय सब्जियां :** प्याज, लहसुन।
- **जड़ वाली सब्जियां :** गाजर, मूली, शलजम, चुकन्दर।
- **फूल वाली सब्जियां :** फूलगोभी, ब्रोकली।
- **फलों वाली सब्जियां :** टमाटर, मिर्च, बैंगन, ककड़ी, खीरा, खरबूजा, तरबूज, लौकी आदि।

(स) क्षमता के आधार पर वर्गीकरण रोपण

- **सीधी बोई जाने वाली सब्जियां :** जैसे - गाजर, मूली, शलजम, टिंडा, भिण्डी, तोरई, ककड़ी, तरबूज, खरबूज, सेम, मटर, करेला, धनिया, पालक आदि।
- **रोपण की जाने वाली सब्जियां :** जैसे - फूल गोभी, पत्ता गोभी, टमाटर, बैंगन, मिर्च, प्याज आदि।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- सब्जियों, फलो के बीज एवं पौधे अच्छे विश्वसनीय स्त्रोत से ही खरीदे।
- बेल वाली सब्जियो जैसे करेला,लौकी, तोराई आदि को बॉर्डर के आस पास लगना चाहिए।
- पोषण सुरक्षा के लिये जैविक दवाइयो का प्रयोग करना चाहिए।
- अधिकतर जैविक विधियो को अपनाये।
- प्रत्येक दिन पोषण वाटिका की देखभाल करे।
- औषधियों के लिये जैसे पुदिना, तुलसी, ग्वारपाठा, हल्दी, अदरक, भृगराज आदि लगाये ।

अधिक जानकारी के लिये निकटतम कृषि विज्ञान केंद्र पर सम्पर्क कर पोषण वाटिका से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकते है।

निष्कर्ष :

बढ़ती जनसंख्या, कुपोषण तथा हानिकारक रासायनिक दवाओ का उपयोग के कारण कई बीमारियाँ हो रही है। यदि मनुष्य चाहे तो खुद को स्वस्थ रखने के लिये एक जैविक पोषण वाटिका लगाकर इन सभी समस्याओं का निराकरण कर सकता है। इसलिये प्रत्येक घर मे एक जैविक पोषण वाटिका होना अति महत्वपूर्ण है।

❖❖

फलदार पौधों में पौध वास्तुः कितना आवश्यक एवं लाभकारी

डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

पत्राचारकर्ता : nrclitchi@yahoo.co.in

प्रस्तावना

पौध वास्तु कला यानी Plant Architecture जिसे आम बोल-चाल की भाषा में पौध ढाँचा निर्माण कहा जाता है, फलदार के पौधों में बहुत ही आवश्यक बाग प्रबंध की प्रक्रिया है। पौधों के बेहतर फलन और गुणवत्ता के लिए डालियो का चौड़े कोणों के साथ मजबूत होना, पौधे के अंदरूनी भाग में सूर्य का प्रकाश एवं वायु का संचार होना, तथा पौधे के लिए निर्धारित एवं आवंटित जगह के भीतर ही उनका का फैलाव होना अत्यन्त जरूरी होता है और इसका पूरा दारोमदार पौधे के वास्तुकला पर निर्धारित एवं आधारित होता है। प्रत्येक फलदार वृक्ष के वृद्धि एवं विकास प्रक्रिया के साथ फलन प्रवृत्ति का ज्ञान, फल गुणवत्ता एवं उत्पादकता की जरूरतें इत्यादि वास्तु-कला निर्धारित करने में मददगार साबित होती हैं। अतः इन्हें समझकर ही वास्तु कला निर्धारण संभव हो सकता है।

प्रत्येक फलदार पौधे की वृद्धि, विकास एवं फलन संबधी जरूरते ठीक उसी प्रकार से होती हैं जैसे किसी व्यक्ति का घर की जरूरतें होती हैं। चाहे जब वह छोटे भू-खंड या बड़े भू-खंड में भवन निर्माण करता है या यूँ समझें कि प्रत्येक व्यक्ति के घर में बैठक कक्ष, रसोई घर, भोजन कक्ष, शयनकक्ष, प्रसाधन, भण्डार कक्ष आदि की जरूरतें होती हैं जिसे छोटे भूभाग अथवा बड़े भूभाग पर भवन निर्माण करके बनाता है। बस अन्तर केवल इतना सा होता है कि बड़े भू खण्ड पर बने भवन में ये सब बड़े-बड़े होते हैं जबकि छोटे भूभाग में निर्मित भवन में ये अपेक्षाकृत छोटे रखे जाते हैं। इसी प्रकार लीची सहित अन्य फलदार पौधों के वास्तु-कला में पौधों को आवंटित जमीन के अनुसार उसके विभिन्न अवयवों को व्यवस्थित एवं समायोजित किया जाता है। जिस प्रकार घर बनाते समय हवा रोशनी, मजबूती, आदि को ध्यान में रखकर उसके खम्भों और कड़ियों (Beams और columns) को निर्धारित करते हैं, उसी प्रकार फलदार पौधों मे ढाँचा बनाते समय प्रथमक, द्वितीयक, तृतीयक शाखाओं की संख्या, उनके आपसी कोणों विभिन्न शाखाओं की लम्बाई आदि को समायोजित करते हुए पौध वास्तु-कला को अंतिम रूप दिया जाता है।

बहुवर्षीय फलदार पौधों जैसे लीची, आम आदि में शीर्ष प्रभुत्व (Apical Dominance) के साथ-साथ मध्य-निचले दो तिहाई क्षत्रक भाग से सर्वाधिक व्यवसायिक उत्पादन प्राप्त होता है और क्षत्रक के ऊपरी एक तिहाई भाग से बहुत कम उपज मिल पाती है। जबकि जड़ो द्वारा अवशोषित जल एवं पोषण का अधिकांश भाग आदतन ऊपरी भाग की तरफ उन्मुक्त रहता है क्योंकि शीर्ष प्रभावी रहता है। यह बात भी सोचनीय है कि ऊपर की ओर जाते समय अवशोषित जल एवं पोषक तत्वों का काफी हिस्सा उनके मार्ग में मौजूद बाधाओं जैसे कटे हुए ठूँठ, सूखी डाली, अवांछित कल्लों के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है और उसकी पूरी मात्रा फल तक नहीं पहुँच पाता और लाभ नहीं मिल पाता है। यह प्रक्रिया कुछ उसी प्रकार से होता है, जैसे नहर

में जाने वाले पानी की मात्रा एवं वेग का लाभ प्रारंभ के किसानों को अधिक तथा दूरस्थ किसानों को कम मिल पाता है। अतः यदि पौध वास्तु कला द्वारा शीर्ष प्रभुत्व को कम करके अवशोषित जल और पोषक तत्व को मध्य-निचले भाग वाले क्षत्रक के तरफ मोड़ दिया जाय तो बेहतर उपज और गुणवत्ता मिल जाती है। लीची और आम के पौधों में मुख्य तने और मंजर धारण करने वाली डालियों के मध्य 5-6 स्तर की शाखाएं होती हैं, जिनके माध्यम से पौधे की पूरी व्यवस्था संचालित होती है। मुख्य तने पर प्रथम स्तर की शाखाएं बनती हैं जिन्हें प्रथमक शाखा कहा जाता है और इनकी संख्या 2 से 5 अथवा अधिक

हो सकती है। प्रत्येक प्रथमक शाखा पर द्वितीयक शाखाएं और द्वितीयक शाखाओं पर तृतीयक शाखायें बनती हैं। तृतीयक शाखाओं पर चतुर्थ स्तर की पतली डालियों का प्रार्दुभाव होता है और उन्हीं पर मंजर धारण करने वाली वार्षिक शाखाओं का विकास होता है। जब पंचम स्तर की शाखाओं का विकास होता है जिन्हें पंचम स्तर की शाखाओं या कल्लों के नाम से जाना जाता है। एक फलत देने वाले लीची के पौधे में वार्षिक कृन्तन द्वारा इन्हीं शाखाओं/कल्लों के विकास और उनके औज पर पौधे का फलन निर्धारित रहता है। वास्तु-कला के माध्यम से प्रथमक, द्वितीयक तथा तृतीयक शाखाओं को निर्धारित किया जाता है जबकि क्षत्रक प्रबंध प्रक्रिया से पतली चतुर्थक, औजपूर्ण पंचम स्तर भी शाखाओं को नियंत्रित किया जाता है जिन पर लगभग छठे स्तर पर मंजर और फूल तथा फल लगते हैं। इस प्रकार से पौध वास्तु को दो भागों में विभक्त करके क्षत्रक प्रबंध की संज्ञा दी जाती है। पौध स्थापना के पहले पांच वर्षों में मुख्य रूप से ढाँचा बनाया जाता है, तत्पश्चात पौधे की उम्र के साथ क्षत्रक प्रबंध का कार्य करते रहते हैं।

पौध वास्तु कला के निर्माण करने की विधि-

एक आर्दश वास्तुकला प्रक्रिया द्वारा पौधों के ढाँचा निर्माण का कार्य सामान्यतः द्वितीय वर्ष से प्रारंभ किया जाता है, जब पौध रोपण विधि और पौध अंतराल के अनुसार मुख्य तने की ऊँचाई निर्धारित करते हुए उसकी शाखा के उद्भव क्षेत्र से प्रथमक शाखाओं का प्रार्दुभाव होता है। पौधों के मुख्य तने की लम्बाई, पौध रोपण अंतराल पर निर्भर करती है। यदि पौधा वर्गाकार विधि में 8 x 8 मीटर की दूरी पर लगाया गया है तब जमीन से 70-80 सेमी. की ऊँचाई पर प्रथमक शाखाओं को निकलने के लिए प्रेरित करना चाहिए। जमीन से 1 मीटर ऊँचाई तक पौध र्शीष कृन्तन द्वारा किया जा सकता है। मुख्य तने पर 70-80 सेमी. की ऊँचाई पर चारों दिशाओं में चार डालियों को छोड़ते हुए शेष कल्लों को हटा देने से यही डालियां प्रथमक शाखा के रूप में विकसित होती हैं। प्रथमक शाखाओं के विकास के समय पौध वास्तु के इस तथ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि एक बिन्दु पर ऊपर के तरफ केवल 180^0 का ही कोण (सरल कोण) बन सकता है और पौधों में यदि 42^0 से अधिक कोण वाली शाखाओं का विकास होता है तब ही चौड़े क्राच कोण वाली शाखाओं (Branch with wider crotch Angle) को विकसित किया जा सकता है। अतः वर्गाकार विधि में लगे हुए पौधों में चार प्रथमक शाखाओं वाला ढाँचा उपयुक्त माना गया है। यहाँ पर भी ध्यान देने योग्य तथ्य है, बहुवर्षीय फल वृक्ष जैसे कि लीची का पौधा 70-80 वर्षों तक फल देता है और कालान्तर में प्रथमक शाखाओं की मोटाई बढ़ने से उनके बीच आपसी कोण 42^o से कम हो सकते हैं। अतः 2-3 प्रथमक शाखाओं पर भी ढाँचा बनाने का प्रयास किया जा सकता है। जिससे आगे चलकर न्यून क्राच कोण की समस्या उत्पन्न न हो सके।

वर्गाकार विधि से लगाये गये पौधे के मुख्य तने के साथ चार प्रथमक शाखाओं वाले पौध वास्तु-कला में मुख्य तने के सापेक्ष एक शाखा के साथ सैद्धान्तिक रूप से 90^0 का कोण बनना चाहिए, परन्तु प्रथमक शाखा के उर्ध्वाधर विकास को ध्यान में रखते हुए 110^0-120^0 का वृहत कोण श्रेयस्कर होता है। ऐसा ढाँचा जहाँ एक ओर वायु के दबाव और फलन के कारण शाखा को फटने से बचाता है, वहीं दूसरी ओर बगीचे में नियमित कर्षण क्रिया करने में कोई बाधा बाधा नहीं पैदा करता।

मुख्य तने पर प्रथमक शाखाओं की संख्या के निर्धारण के पश्चात उनकी लम्बाई का निर्णय एक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक बिन्दु होता है जो पौधे के क्षत्रक की दिशा का सूत्रधार होता है। यदि पौधे 8 x 8 मीटर दूरी पर लगाये गये हैं, तो प्रत्येक पौधे को बढ़ने के लिए एक तरफ 4 मीटर की अधिकतम सीमा रहती है जिसमें से दो पौधों या कतारो के बीच 0.5 मीटर गैलरी या गली के रूप में स्थान रिक्त रखते हुए पौधे को एक तरफ मात्र 3.5 मीटर ही बढ़ा सकते हैं। इसमें से यदि नियमतः 60 प्रतिशत क्षेत्र (2.1 मीटर पतली डालियों, पत्तियों, कल्लों, मंजर आदि के लिए) ढ़ाचा और 40 प्रतिशत क्षत्रक के लिए रखते है तो लगभग 2 मीटर ढाँचा और 1.5 मीटर पतली डालियों, पत्तियों, कल्लों मंजर आदि के लिए क्षत्रक क्षेत्रफल के रूप में रखना अनिवार्य हो जाता है। अतः प्रथमक, द्वितीयक और तृतीयक तथा कभी-कभी चतुर्थक शाखा का कुछ भाग 2 मीटर के अन्दर सीमित रखना श्रेयस्कर होता है। इन सभी शाखाओं की लम्बाई और पौधे के अन्य अवयव यदि आपसी सामान्जस्य तथा मौजूद दशाओं पर आधारित रखे जाते हैं तो बेहतर परिणाम मिलता है। सैद्धान्तिक तौर पर प्रत्येक शाखा को 60-70 सेमी. लम्बाई की आजादी होती है। परन्तु जिन दशाओं में पौधे उगाये जा रहे हैं उनके अनुरूप इनमें आपसी लम्बाई में 20-25 प्रतिशत तक का उतार-चढ़ाव संभव रहता है परन्तु ऐसा करते समय डालियों की मजबूती, उनका आड़ा-तिरछा होना और उनके आपसी कोण का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सामान्य तौर पर प्रत्येक प्रथमक शाखा पर 2-3 द्वितीयक और प्रत्येक द्वितीयक शाखा पर 2-3 तृतीयक शाखाओं को विकसित करने पर पेड़ के भीतर सूर्य की रोशनी और वायु संचार सामान्य स्तर पर बना रहता है तथा पौधे का केन्द्रक भाग खुला रहने के कारण क्षत्रक के अंदरूनी भाग में भी फलत होती है जिससे फल उत्पादन में डेढ़ से दो गुना की वृद्धि और गुणवत्ता में सुधार पाया गया है।

इस प्रकार का पौध वास्तु कला का अनुपालन यदि लीची के वर्गाकार पद्धति में 8 x 8 मीटर की दूरी पर लगे पौधों में किया जाय तो अच्छे पौधे से नियमित उत्पादन और पौध स्वास्थ्य बरकरार रखने में मदद मिलती है।

पौध वास्तुकला के निर्माण करते वक्त बरते जानी वाली सावधानियाँ-

परन्तु सभी बागवानों द्वारा, सभी पौधों में ऐसा कर पाना संभव नहीं हो पाता अतः किसानों को सलाह दी जाती है कि ढ़ाचा निर्माण या पौध वास्तु कला के संबंध में निम्न बातों का ध्यान रखें।

1. पौधे के मुख्य तने के पास खड़े होकर ऊपर की ओर देखने पर आसमान साफ तौर पर दिखाई देना चाहिए ।
2. पौधे के मुख्य तने के पास एक सीधी डण्डी या बांस खड़ा करने पर कोई भी प्रथमक या द्वितीयक या तृतीयक शाखा उसे क्रास नहीं करनी चाहिए।
3. मुख्य तने से 2 मीटर की दूरी पर गोलाई में घूमतेहुए ऊपर की तरफ शाखाओं की गणना करनें पर उनकी संख्या 8-12 के बीच होनी चाहिए।
4. पौधे को बाहर से देखने पर पूरा क्षत्रक शंक्वाकार और बेतरतीब न होकरचपटा और गोल होना चाहिए।

निष्कर्ष

यद्यपि कि उपरोक्त वर्णित बिन्दुओं का ध्यान रखकर फलदार के पौधों में उचित वास्तु कला का निर्धारण किया जा सकता है परन्तु यदि यह कार्य प्रशिक्षित व्यक्तियों या अनुभवी सलाहकारों के देखरेख में एवं परामर्श से किया जाय तो बेहतर परिणाम मिलता है। फलदार पौधों से उचित वास्तु द्वारा किसी क्षेत्रफल विस्तार से भी ज्यादा और गुणवत्तापूर्ण फल उत्पादन संभव हो सकता है।

❖❖

दुधारू पशुओ में बाँझपन की समस्या एवं निदान

डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह[1], अजीत सिंह[2] एवं गौरव जैन[1]

[1,3]पशु चिकित्सा अधिकारी पशु चिकित्सालय, जिला प्रयागराज

[2]पशु पालन एवं दुग्धाशाला विज्ञान विभाग, शुआट्स प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : ngjamessingh@gmail.com

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि के साथ - साथ पशुपालन भी आय का अच्छा व्यवसाय है। ये दोनों व्यवसाय एक दूसरे पर पूर्णतया निर्भर हैं। कृषि के बगैर पशुपालन सम्भव नहीं है और पशुपालन के बिना कृषि। वैसे तो पशु संख्या के आधार पर हमारे देश में सबसे अधिक पशु पाले जाते है। प्रति पशु दुग्ध उत्पादन कम होने के कुछ मुख्य कारण है एक तो हमारे देश में अशुद्ध नस्ल के पशु अधिक संख्या में हैं दूसरा मुख्य कारण है दुधारू पशुओं में बांझपन। पशु के बाँझ हो जाने के कारण अच्छी नस्ल के पशु भी कल्लखानों में काट दिए जाते है जिससे न केवल किसानों को भारी आर्थिक क्षति होती है बल्कि श्रेष्ठ जनन द्रव्य भी नष्ट हो जाता है जिससे दिन प्रतिदिन अच्छे पशुओं की संख्या लगातार घट रही है।

1. बांझपन के लक्षण :

पशुपालक अपने दुधारू पशुओ में बाँझपन की समस्या सुनकर डर जाता है। बांझपन स्पष्ट रूप से दुधारू पशु को एक वर्ष में एक बच्चा देना चाहिए या यों कहें कि पशु को एक साल के अंदर ब्याह जाना चाहिए और ये तभी संम्भव है जब पशु ब्याने के 45-75 दिन के बीच गर्भित हो जाए और गर्भ रुक जाए यदि इस समय या अवधि में पशु गर्मी में नहीं आता है तो हमे मान लेना चाहिए कि हमारा दुधारू पशु (गाय व भैंस) बांझपन की तरफ बढ़ रहा हैं। कभी-कभी तो पशु गर्मी में तो हर 21 दिन बाद आता है लेकिन गर्भ नहीं ठहरता है। ये भी बांझपन का एक लक्षण है।

2. दुधारू पशुओं में बांझपन के कारण :

दुधारू पशुओं में बांझपन के निम्नलिखित कारण हैं

- दुधारू पशुओं के दूध में सभी आवश्यक पोषक तत्व (वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन आदि) मौजूद रहते है। यदि पशु के शरीर में इन पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तो पशुओं में अस्थाई बांझपन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
- दुधारू पशुओं के लिए हरे चारे की कमी के कारण भी पशुओं में बांझपन आ जाता है क्योंकि हरे चारे में सभी आवश्यक पोषक तत्व मौजूद रहते हैं जिससे पशुओं को सभी पोषक तत्व मिल जाते हैं। और हरे चारे आसानी से पच भी जाते है। सूखे चारे को पचाने में भी पशु की ऊर्जा अधिक खर्च होती है और इनसे पोषक तत्व भी बहुत कम मात्रा में मिल पाते है और कुछ सूखे चारे जैसे धान की पुआल दुधारू पशुओं को खिलाने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। इससे दुग्ध उत्पादन में कमी व कभी-कभी पशु की पूंछ सूख जाती है। जिससे पशु पालक को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।
- पशु के ओवरी में सिस्ट बन जाते हैं। सिस्ट बनने के कारण पशु गर्मी में तो नियत समय पर आता है लेकिन गर्भ नहीं ठहरता है। इस कारण दुधारू पशु बांझपन का शिकार हो जाता है।
- पशुओं के पेट में कीड़े हो जाते हैं कीड़े होने के कारण भी पशुओं में बांझपन आ जाता है। क्योंकि जो पोषक तत्व हम अपने पशुओं को खिलाते हैं वे पोषक तत्व कीड़े चूस लेते हैं और पशुओं को उनकी आपूर्ति नहीं हो पाती हैं।

3. बांझपन से निदान

पशुपालक अपने दुधारू पशुओं में बांझपन के निजात हेतु यदि हम कुछ मुख्य सावधानिया बरते तो इस समस्या से छुटकारा मिल सकता है। इस समस्या के निराकरण के लिए सबसे पहले हमें दुधारू पशुओं के खानपान व रहन-सहन पर ध्यान देना होगा इसके लिए हमे अपने दुधारू पशु को संतुलित

आहार खिलाने की आवश्यकता है और संतुलित आहार पशु के दुग्ध उत्पादन के आधार पर खिलाना चाहिए। दुधारू भैंस को दो लीटर दूध पर 1 किग्रा. राशन व गाय को 2.5 लीटर दूध पर 1 किग्रा. राशन खिलाना चाहिए। इसके अलावा 1-1.5 किग्रा. राशन जीवन निर्वाह के लिए देना चाहिए। संतुलित आहार देने का उचित तरीका अपनाना चाहिए पशु को दाना खिलाने के लिए सुबह का दाना शाम को और शाम का दाना सुबह को भिगो देना चाहिए। पशु पालकों को ध्यान रखना चाहिए कि अधिकतर पशुपालक गाभिन पशु को दाना या अच्छा चारा तब तक ही देते हैं जब तक पशु दूध देती हैं। दूध से हटने के बाद पशु को सूखे चारे या तुड़ी पर छोड़ देते है। जबकि इस समय पशु को और अधिक अच्छे चारे व दाने की जरूरत हैं क्योंकि यह वह समय है जिसमें पशु को अगले ब्यांत के लिए भी तैयार होना है और पेट में पल रहे बच्चे का भी भरण-पोषण करना है। पशुओं के पेट में कीड़े होने के मुख्य लक्षण पशुओं की चमड़ी खुरदरी, गोबर में बदबू व पशु का दुग्ध उत्पादन पशु की क्षमता के अनुरूप नहीं हो पाता है। पेट में कीड़ों के लिए दुधारू पशु को 60-90 मिलीलीटर एल्बोमार पिला देनी चाहिए और 15-21 दिन के अंतराल पर दोबारा दवा पिला देनी चाहिए ऐसा करने से पशु के पेट के सभी कीड़े नष्ट हो जाते है। दुधारू पशु को हरे चारे की आपूर्ति के लिए हरे चारे को इस क्रम में उगाना चाहिए की वर्ष भर इसकी पूर्ति अच्छे तरीके से होती रहे इसके लिए हमें सस्यक्रम अपनाने की आवश्यकता पड़ेगी। मई-जून माह में मक्का, ज्वार, बाजरा आदि सितम्बर-अक्टूबर में बरसीम सरसों, जई, फरबरी-मार्च माह में मक्का के साथ लोबिया बोया जा सकता हैं। यदि इस तरीके से हम फसलों को बोएँगे तो एक चारा समाप्त होने से पहले दूसरा चारा तैयार हो जाएंगा। इसके लिए हमें दो चीजों की आवश्यकता पड़ेगी एक तो जमीन पर्याप्त हो और दूसरा पानी का साधन अच्छा हों यदि इनमें किसी भी चीज की कमी है तो हम समय क्रम को नहीं अपना सकते है। पशु पालकों को ध्यान रखना चाहिए की ज्वार का हरा चारा बुवाई के बाद जल्दी नहीं खिलाना चाहिए कम अवधि वाले पौधों में ग्लूकोससाइड होता जिसे धूरिन भी कहते है वह पशु के पेट में जाकर प्रूसिक या हाइड्रोसायनिक अम्ल के रूप में बदल जाता है। ज्वार की बुवाई के 30 दिन की उम्र वाले पौधों तथा जमीन की सतह के पास नई शाखाओं में यह अम्ल बहुत अधिक मात्रा में होता है। पेंडी वाली फसल भी छोटी अवस्था में पशुओं के लिए जहरीली होती है। फसल को फुल लगने के समय काटा जाना चाहिए। ग्लूकोसाइड पत्तियों में तनों का अपेक्षा अधिक मात्रा में होता है। यदि ज्वार की बुवाई के समय नत्रजन वाली उर्वरको की अधिक मात्रा खेत में दाल दी जाए तो कम उम्र वाले पौधों में नाइट्रेट अधिक मात्रा में जमा हो जाता हैं तथा धूरिन की मात्रा भी बढ़ जाती है। सूडान घास में ग्लूकोसाइड ज्वार की अपेक्षा बहुत कम होता है। 30 दिन के ज्वार के पौधें में ग्लूकोसाइड इतनी अधिक मात्रा में जमा रहती है कि यदि गाय को 4-5 किग्रा. हरा चारा खिला दिया जाए तो उसकी मृत्यु तक हो सकती है। ऐसी फसल में जिसमें पानी की कमी रही हो धूरिन की मात्रा बढ़ जाती है। इसलिए पशुपालकों को सलाह दी जाती है कि वे फसल की अवस्था (40-45 दिन बुवाई के बाद) को ध्यान में रखकर ही पशुओं को खिलाएं यदि बरसात न हुई तो फसल में कम से कम दो पानी लगाने के बाद ही पशुओं को खिलाएं क्योंकि पानी लगाने से हाइड्रोसाइनिक अम्ल जड़ों के माध्यम से घुलकर जमीन में चला जाता है।

कभी-कभी पशुओं की ओवरी में सिस्ट बन जाते हैं सिस्ट बनने का मुख्य कारण है कि पशुओं के ब्याने के बाद पशु की अच्छे से सफाई न हो पाना। ब्याने के 10-15 दिन बाद पशु छटाव (मैला) डालता है। यदि इस समय ओवरी की सफाई अच्छे से नहीं हो पाती है तो पशु की ओवरी में मैला रुकने से सिस्ट बन जाते हैं सिस्ट बनने का मुख्य कारण ये भी है कि जब पशु ब्याहता है तो कभी-कभी बच्चा फस जाता है या पशुओं में जेर रुक जाती हैं। इस स्थिति में पशुपालक किसी भी अनभिज्ञ व्यक्ति को बुलाकर जबरदस्ती बच्चे को बाहर खींच लेता है या जेर को भी जबरदस्ती निकालने की कोशिश करता है तो इसमें जेर का कुछ टुकड़ा टूटकर अंदर ही रह जाता है जेर अंदर रहने के कारण इसमें अंदर ही अंदर सड़न हो जाती है। यदि अधिक मात्रा में जेर रह जाती है तो सेप्टिक बन जाता है और कम मात्रा में रहने पर सिस्ट बनने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए पशु जितने आराम से ब्याता हैं पशु और पशुपालक के लिए इतना ही लाभकारी है। यदि पशु जेर डालने में देर करता है तो पशु को जेरसाफ, एक्सापार या यूट्रोटोन आदि दवाई पिलाई जा सकती है। इससे पशु जेर जल्दी ही डाल देगा और उसके गर्भाशय की सफाई अच्छी तरीके से हो जाएगी। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन पशुओं का ब्यायाम नहीं होता हैं। उन पशुओं में भी बांझपन के लक्षण आ जाते हैं। इसलिए दुधारू पशुओं के लिए व्यायाम बहुत जरूरी है। प्रायः ऐसा देखने में आया है कि जो बाँझ पशुओं को पशुपालक खुला छोड़ देता है कुछ समय

पश्चात वे अपने आप ही ग्याभिन हो जाते है और उनका गर्भ भी ठहर जाता है। व्यायाम के साथ-साथ स्वच्छ व ताजा पानी भी बहुत आवश्यक है। भैसों में गर्मी के महीनों में गर्भ नहीं ठहरता है प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि यदि भैसों को 3-4 घंटे ठंडे पानी में नहलाया या लेटाया जाए तो इससे भैंसों में सीजनल बांझपन को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। दुधारू पशुओं में बांझपन का एक मुख्य कारण और है जिन पशुओं के बच्चे मर जाते है, उन पशुओं को आक्सीटोसिन इंजेक्सन लगाकर उनका दूध जबरदस्ती निकाला जाता है। इससे पशु दूध हो दे देता है लेकिन उनमें बांझपन व कभी-कभी पशु का अबोर्शन (बच्चा गिरा देना) भी हो जाता है। इन सबके साथ-साथ दुधारू पशुओं के लिए मिनरल मिक्चर भी बहुत जरूरी है। मिनरल मिक्चर से पशुओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति हो जाती है। मिनरल मिक्चर दुधारू पशुओं को 35-40 ग्राम प्रति दिन खिलाना चाहिए

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि भारत में दुधारू पशु अधिक है परन्तु उनमें बाँझपन की समस्या के कारण अधिकतम दुग्ध उत्पादन नहीं हो पा रहा है। जिसकी मुख्य समस्या पशुपालकों में बाँझपन की सम्पूर्ण जानकारी न हो पाना है, जिससे उनका सही निदान नहीं हो पाता है। अगर पशुपालकों द्वारा पशुओं में बाँझपन की समस्या का उचित समय पर निदान कर लिया जाय तो बाँझपन के कारण होने वाले खर्चे एवं कम दुग्ध उत्पादन से उनको छुटकारा मिल जायेगा और आर्थिक लाभ कर सकेंगे।

❖❖

बंजर भूमि में सीताफल की जैविक खेती

डॉ. नकुल राव रंगारे, रोमिला खेस्स एवं गजेन्द्र कुमार राणा

जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : nrrangare@yahoo.co.in

प्रस्तावना

सीताफल (Annona squamosa) ऊष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र का एक स्वादिष्ट फल है। इसे रोग एवं कीट मुक्त तथा विभिन्न मृदा एवं जलवायु क्षेत्रों में वृहद अनुकूलनशीलता के लिए जाना जाता है। इसका उत्पत्ति स्थान ट्रॉपिकल अमेरिका माना जाता है, बेली के अनुसार सीताफल की उत्पत्ति वेस्टइंडीज एवं दक्षिण अमेरिका से हुयी है जबकि दूसरी जाति Annona cherimola की उत्पत्ति इक्वाडोर तथा पेरू से हुई है।

भारत में सीताफल को लाने के पश्चात् तेजी से पूरे क्षेत्र में लगाया जाने लगा। इसे अभी ब्राजील, आस्ट्रेलिया, म्यांमार, चिली, मिस्र, मेक्सिको, इज़राइल, फिलीपीन्स, स्पेन, दक्षिण अफ्रीका, वेस्टइंडीज, भारत एवं श्रीलंका में बहुतायत से उगाया जाता है। भारत में इसे आंध्रप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, असम, कर्नाटक एवं उडीसा में उगाया जाता है।

सीताफल के प्रति 100 ग्रा. फल में 23.5 ग्रा. कार्बोहाइड्रेट, 1.6 ग्रा. प्रोटीन, 3.1ग्रा. रेशा, खनिज तत्वों जैसे 17 मि. ग्रा. कैल्शियम, 47 मि ग्रा. फास्फोरस, एवं 1.5 मि ग्रा. आयरन तथा 37 मिग्रा. विटामिन बी की मात्रा होती है। इसे ऊर्जा का अच्छा स्रोत माना जाता है जिससे लगभग 104 कैलोरी ऊर्जा का निर्माण होता है। सीताफल का प्रयोग पूर्ण परिपक्व अवस्था में खाने के रूप में किया जाता है। इसका जैम, जेली तथा आइसक्रीम एवं अन्य दूध के उत्पाद बनाने में प्रयोग होता है। कच्चे फलों, बीजों, पत्तियों तथा जड़ों को दवाई के रूप में आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा में उपयोग करते है। बीज में उपलब्ध लगभग 30% तेल साबुन तथा पेन्ट उद्योग में किया जाता है।

जलवायु एवं भूमि

सीताफल गर्म जलवायु तथा मध्यम शीत और आर्द्र क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है। शीत ऋतु में यह थोड़े समय के लिए सुषुप्तावस्था में चला जाता है लंबे समय तक ठंडा मौसम एवं पाला वृद्धि को प्रभावित करता है। यदि तापमान 40° सेंटीग्रेड से अधिक हो जाए तो भारी मात्रा में फूलों का गिरना शुरू हो जाता है। उच्च तापमान फलों की वृद्धि एवं उपज को भी प्रभावित करता है। अतः इस फसल के लिए गर्म उपोष्ण जलवायु उत्तम रहती है। इसे 1000मी. की ऊँचाई तक अच्छी प्रकार से उगाया जाता है। यह विपरीत मौसम में भी अच्छा प्रदर्शन देती है। सीताफल की चेरीमोया किस्म बाकी किस्मों की अपेक्षा कम तापक्रम पर भी अच्छी उपज दे देती है।

सीताफल को सभी प्रकार की मृदा से लेकर बलुई मृदा तक में सफलता पूर्वक उगाया जाता है। बेकार पड़ी भूमि, बलुई या पथरीली मृदा में इसे अच्छी प्रकार से उगाया जाता है। यद्यपि मृदा अच्छी उर्वरक तथा जल निकास वाली होनी चाहिए। मृदा का पी. एच. मान 6.8-7.0 अच्छा माना जाता है। लवणीय तथा क्षारीय मृदा में इसका प्रवर्धन अच्छा नहीं हो पाता है।

प्रजाति- सीताफल की निम्न महत्वपूर्ण किस्में हैं : रेड सीताफल, बालानगर, अर्कासहान, बारबाडोस, आइलैंडर, मैमॉथ आदि।

बालानगर - अन्य किस्मों की अपेक्षा फल की गुणवत्ता अधिक अच्छी होती है। एक वृक्ष में लगभग 48 फल लगते हैं। एक फल का वजन 137ग्रा., गूदा 44.9%, 20.7%, अम्लता 0.2%, एवं कुल शर्करा 17.9%, होता है। बीज का वजन 5.7ग्रा. होता है।

रेड सीताफल - यह एक चांस सीडलिंग से उत्पन्न हुआ है। फल गुलाबी गहरे रंग का तथा गूदा लाल रंग का होता है। बीजों की संख्या ज्यादा होती है। एक वृक्ष में लगभग 22 फल लगते है तथा प्रति फल का वजन 156ग्रा. होता है। टी एस एस 22.3%, अम्लता 0.24%, कुल शर्करा 15.9%, गूदा 30.5% तथा बीज का भार 5.2ग्रा. का होता है।

अर्कासहान - यह उन्नत किस्म Annona atemoya तथा Annona squamosa L. के संकरण से उत्पन्न संतति है

जिसे आई आई. एच. आर. बेंगलुरु द्वारा तैयार किया गया है। इसके फल सितम्बर-अक्टूबर में परिपक्व हो जाते है। फल हल्के हरे रंग के तथा वज़न लगभग 210 ग्रा. होता है। गूदा क्रीमी सफेद रंग का जिसमें बीज की मात्रा कम 9 ग्राम प्रति 100 ग्रा. होती है। कुल शर्करा 22.8% तथा टी एस एस 300 ब्रिक्स से ज्यादा होता है। इसकी औसत उपज 12 टन/हे. होती है तथा सूखे के लिए प्रतिरोधी पायी गयी है।

प्रवर्धन

सीताफल का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक विधियों द्वारा होता है। आनुवांशिकीय समरुपता तथा अधिक उपज के लिए क्लोनल प्रवर्धन बहुत आवश्यक है।

बीजों द्वारा पौध विकसित करना :-

सीताफल के बीजों में बहुत कम या किसी प्रकार की सुषुप्तावस्था नहीं होती है। नए बीज 20-30 दिनों में अंकुरित होकर लगभग 90% तक अंकुरण क्षमता देते है। जबकि चेरीमोया के बीजों को गौ मूत्र से उपचारित करने पर उनकी अंकुरण क्षमता बढ़ाई जाती है। बीजों को पौधशाला या पॉलीथीन के थैलों में बोया जाता है। यदि सीताफल की सांकुरडाली को बीज द्वारा तैयार किए गए सीताफल तथा रामफल के पौध के मूलवृंत से उपरोपित की जाती है, तो ये पांचवे वर्ष में फल देना शुरु कर देते है तथा सीताफल पर 29 फल प्रति वृक्ष एवं रामफल पर 41 फल प्रति वृक्ष उपज़ देते है।

वानस्पतिक प्रवर्धन :-

कलिकायन एवं उपरोपण - यह सीताफल के प्रवर्धन की व्यवसायिक विधि है। कलिकायन में शील्ड, पैच, परिवर्तित फोरकर्ट एवं चिप विधियाँ 53-100% तक सफल हैं। कलिकायन को बसंत ऋतु अथवा शरद ऋतु में किया जाता है। उपरोपण में जिव्हा, क्लेफ्ट, वीनियर, इनार्चिंग तथा स्प्लाइस विधियाँ सीताफल के लिए उपयुक्त हैं।

कलम लगाना - सीताफल के तना कलम को गौ मूत्र से उपचारित कर धूम्र कक्ष में रखने से 90% सफलता मिलती है।

पौधरोपण क्रियाएँ

बीज द्वारा पौधशाला में तैयार किए गए पौध को सीधे रोपित करने से जड़ों को नुकसान होने की संभावना बढ़ जाती है जिससे पौधे मर जाते है। अतः इन पौधों को पॉलीथीन के थैलों में उगाकर कलिकायन या उपरोपण के पश्चात् इन्हे रोपित करना चाहिए। गड्ढों को 50 सेमी. × 50 सेमी. × 50 सेमी. आकार में खोदकर उसे मृदा मिश्रण से भर दिया जाता है। पौध से पौध तथा कतार से कतार की दूरी 5 मी. रखकर वर्गाकार विधि द्वारा लगभग 390 पौधे प्रति हेक्टेयर लगाया जा सकता है। पौधरोपण वर्षा ऋतु में करना चाहिए।

पुष्पन एवं फलन

सीताफल में चार वर्ष के अंदर ही फूल आना शुरु हो जाता है। पुष्पन का समय काफी लंबा मार्च से अगस्त तक होता है। पुष्प कलिकाएँ 27 से 35 दिनों के अंदर पुष्पों में विकसित होती है। बसंत तथा ग्रीष्म ऋतु में फल विकसित नहीं हो पाते केवल वर्षा ऋतु में ही फलों का निर्माण होता है। पुष्पन के चार माह पश्चात् फल पूर्ण रुप से परिपक्व हो पाते हैं।

उद्यान क्रियाएँ

सिंचाई - फलों का विकास वर्षा ऋतु में होता है इससे बिना सिंचाई के अच्छी फसल प्राप्त हो जाती है। इसलिए इसे सूखा सहनशील पौधा कहते हैं। यह देखा गया है कि सीताफल को यदि छाएदार स्थान में उगाया जाता है तथा सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो फलों का गिरना रुक जाता है। दो से तीन सिंचाई मानसून के पूर्व में करने से फलन में तथा मानसून के पश्चात् एक या दो सिंचाई करने से फलों के आकार में बढ़ोत्तरी होती है।

अंतराशस्य क्रियाएँ - फलन के पूर्व अन्य फसलों को अंतराशस्य के रुप में लेकर आर्थिक क्षति को कम किया जा सकता है। मूंगफली, अलसी तथा अन्य अल्प मोटे अनाज को वर्षा ऋतु में तथा मटर, तिलहनी फसलों तथा चने को शीत ऋतु में अंतराशस्य फसलों को लिया जा सकता है। अंतराशस्य प्रक्रिया मृदा के अपरदन तथा खरपतवार की वृद्धि को रोकने मे सहायक होती है। अतः रायसनिक उर्वरक का प्रयोग नही करना पड़ता।

जैविक खाद

अधिकांशतः सीताफल अनुपयोगी या अनुपजाऊ भूमि पर लगाये जाते है। जहाँ खाद या उर्वरक का उपयोग नहीं किया जाता है। वास्तव में आवश्यक खाद कि मात्रा समय समय पर देने से अच्छे फल और अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

सड़ी हुयी गोबर की खाद पहले वर्ष 10 किलो ग्राम दूसरे वर्ष 20 किलो ग्राम तीसरे वर्ष 30 किलो ग्राम चौथे वर्ष 40 किलो

ग्राम और 5 वर्ष या उससे ज्यादा वर्षो में 50 किलोग्राम प्रति पौधा देते रहते है। अरंडी कि खली वजन 500 ग्राम दिया जाता है ।

1-5 साल तक के पौधे के लिए आधा किलो ग्राम, 6 से 12 साल के पौधे के लिए 1-2 किलो ग्राम, 12 साल से ऊपर उम्र वाले पौधे को 3 से 5 किलो ग्राम प्रति साल के हिसाब से जैसे 20 साल के पौधे को 10 किलो ग्राम प्रति पौध खाद साल में दो बार देना चाहिए।

सधाई एवं कृन्तन - सीताफल धीमी गति से वृद्धि करने वाला पौधा है। यह झाड़ीनुमा तथा बहुत सारी शाखाओं से युक्त होता है। इसके फल पुरानी तथा नई दोनों प्रकार की शाखाओं में लगते हैं। पुरानी शाखाओं में हल्की कांट-छांट करने से अच्छी शाखाएँ निकलने लगती हैं। कृन्तन द्वारा एक-दूसरे से रगड़ खाते शाखाओं को हटाकर उन्हें अधिक सूर्य प्रकाश एवं वायु प्रदान किया जाता है। कलिकायन द्वारा विकसित पौधों में एकरुप वृद्धि होती है तथा कृन्तन की आवश्यकता बहुत कम होती है। सीताफल सामान्यतः नवम्बर-दिसम्बर में सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं। पत्तियाँ तुड़ाई के समय पीली पड़कर शीत ऋतु आते ही गिर जाती है। पौधा लगभग दो महीने तक पत्ती रहित अवस्था में रहता है तथा बसंत ऋतु आते ही नई वृद्धि शुरु हो जाती है। कृन्तन सुषुप्तावस्था के पश्चात् बसंत ऋतु में नई वृद्धि होने पर की जाती है।

शीर्ष उपरोपण - पुराने, कम फल देने वाले निम्न गुणों के सीताफल के वृक्षों में उपरोपण विधि द्वारा उनके प्ररोह तन्त्र को उन्नतिशील किस्मों में परिवर्तित किया जा सकता है। सुसुप्तावस्था के पश्चात् वृक्ष की मोटी शाखाओं को काटकर मुख्य तने से निकली हुई तीन या चार शाखाओं को उपरोपण के लिए चुनना चाहिए। अन्य शाखाओं को मूलतः काट देना चाहिए तथा उपरोपित शाखाओं को 1 से 1.5 मी. लंबाई छोड़कर काट देना चाहिए। इन शाखाओं पर उपरोपण किया जाता है।

परागण एवं फलन

सीताफल के व्यवसायिक उत्पादन की सबसे प्रमुख बाधा उसकी कम उत्पादन क्षमता है। इसमें फूल तो पर्याप्त मात्रा में आते है परंतु फलन में कमी के कारण उपज़ में कमी आती है। सामान्य/प्राकृतिक अवस्था में केवल 1-8% ही फूलों से फल बन पाते है। इसकी प्रमुख वजह बाह्य एवं आंतरिक कारक जिससे परागण प्रक्रिया पूर्ण नही हो पाती है जैसे फूल आने के समय कम या अधिक आर्द्रता, मृदा में नमी की कमी, वानस्पतिक एवं पुष्प वृद्धि में स्पर्धा, हाइपोगाइनी, डाइकोगेमी, परागकणों का कम अंकुरण, कीट परागदों की कमी इत्यादि।

उत्तर भारत में सीताफल के पुष्पन का समय मुख्यतः गर्मी के मौसम में आता है जब तापक्रम 40°C से ज्यादा, आर्द्रता बहुत कम, तेज शुष्क हवाएँ तथा मृदा शुष्क होती है। इसके कारण न तो परागकण बनते है और न ही फलन होता है। वातावरण में नमी आते ही वर्षा ऋतु में फलन होने लगता है। यदि इन फूलों का हाथों द्वारा परागण किया जाए तो लगभग 85% तक फल प्राप्त होते हैं।

सिंचाई

सीताफल में सिंचाई कि ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। अतः गर्मी में सप्ताह में एक बार व ठण्ड में 15-20 दिन बाद एक बार पानी देने से पैदावार और पेड़ कि वृद्धि ठीक होती है। बीजू पौधे 3-4 वर्ष व बडिंग 2 -3 में फल देने लगते है। फलो के समय सितम्बर से नवम्बर के बीच एक सिंचाई करनी चाहिये।

किट नियंत्रण

मिली बग प्लेनोंकान्क्कास : पेसीफाईकस - सफ़ेद रुई की संरचना वाले ये पौधे कि कोमल पत्तियां व शाखाओ को नुकसान पंहुचाते है इसके नियंत्रण के लिए गौ मूत्र को नीम के काढ़े के साथ मिलाकर हर 15 दिन के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिये।

रोग नियंत्रण

पिंक रोग - इस रोग की रोकथाम के लिए गौ मूत्र को 15-20 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिये।

तुड़ाई उपज - प्रति वर्ष प्रति पेड़ से लगभग 50-100 फल मिल जाते है। सीताफल के फल तोड़ने के 1 सप्ताह लगभग बाद खाने योग्य होते है। जब फल कुछ कठोर रहते है तभी तोड़ लेना चाहिए अन्यथा पेड़ पर काफी दिनों तक रहने पर ये फटकर सड़ने लगते है।

छंटाई और सधाई - समय समय पर सूखी टहनियों को काट दे एवं पेड़ को आकार देने के लिये फल तुड़ाई के पश्चात अनावश्यक शाखाओं की हल्की छंटाई कर देनी चाहिए। सधाई आवश्यकतानुसार एक निश्चित रूप में प्रदान करने के लिए आवश्यक है। यह कार्य समय-समय पर की जाती है।

फलों की तुड़ाई एवं रखरखाव

सीता फल के पेड़ से प्रतिवर्ष लगभग 50-100 फल मिल जाते है। सीताफल की तुड़ाई फलों के दृढ़ एवं उनके गिरने की अवस्था पर ही कर लेना चाहिए। यदि फल वृक्ष पर ही रह जाते हैं तो अच्छे से पकने की अपेक्षा फट जाते है। फलों की तुड़ाई उनके हल्के हरे रंग होने पर की जाती है। कार्पेल के बीच का रंग पीला-सफेद होने लगता है तथा फटने लगता है। फलों की तुड़ाई अगस्त से प्रारम्भ होकर नवम्बर-दिसम्बर तक चलती है। सीताफल 5 वर्ष की उम्र से फल देना प्रारंभ कर देते है तथा 15 वर्ष तक उपज देते है। सीताफल औसतन 60-70 फल प्रति वृक्ष देता है जिसका वनज 113-227 ग्रा. प्रति फल होता है। तुड़ाई के कुछ दिनों पश्चात् ये पूर्णतः परिपक्व हो जाते है। कमरे के तापक्रम पर फलों की जीवन अवधि 4 दिन की होती है। यह देखा गया है कि फलों को यदि छिद्रित पॉलीथीन से, कागज से लपेटें एवं उन्हें क्रमशः गेहूँ के भूसे में, लकड़ी के बुरादे या बोरों में परिपक्व होने दें तो फलों के आकार में कम हानि होती है । परिपक्व फल मुलायम तथा जल्द खराब होने वाले होते है इसलिए इन्हें विशेष रख रखाव की आवश्यकता होती है। फलों को अच्छी प्रकार से लपेट के पैकिंग कर दूर बाजारों में भेजा जाता है।

निष्कर्ष

सामान्यतः सीताफल के वृक्ष को अधिक देखरेख की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु यदि सीताफल की थोड़ी देखरेख की जाय तो बंजर भूमि में भी सीताफल की अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। सीताफल फल तुड़ाई के पश्चात् सामान्य कमरे के तापमान पर भी कुछ ही दिनों में परिपक्व हो जाते हैं परन्तु यदि उन्हें थोड़े रखरखाव के साथ रखा जाय तो उनके आकार में कम हानि होती है। किसान यदि बंजर भूमि में सीताफल का पेड़ उपरोक्त विधि द्वारा लगाये और उनकी थोड़ी देखरेख करे तो वे अच्छी उपज प्राप्त कर अपने आय को बढ़ा सकते हैं।

❖❖

भारत में जी.एम. फसलें और विज्ञान की राजनीति

विजय बहादुर

शुआट्स प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : vijaybahadur2007@gmail.com

प्रस्तावना

पिछले दिनों आनुवंशिक रूप से परिवर्तित यानी जीएम फसलों के मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित तकनीकी समिति की रिपार्ट आने के बाद देश का वैज्ञानिक समुदाय जिस तरह आंदोलित हुआ उसे देख कर हैरानी होती है। कृषि अनुसंधान संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिकों और जैव तकनीक, वन और पर्यावरण मंत्रालय के तकनीकशाहों ने रिपार्ट आने के बाद एक घोषणापत्र जारी करते हुए प्रधानमंत्री से गुहार लगाई कि सरकार को इस मसले पर और वक्त जाया नहीं करना चाहिए और जीएम फसलों के व्यावसायिक उत्पादन को तुरंत अनुमति दी जानी चाहिए। जबकि तकनीकी समिति ने अपनी रिपार्ट में कहा है कि जीएम फसलों के परीक्षणों पर दस सालों के लिए प्रतिबंध लगा देना चाहिए और इस अवधि में इस बात का आकलन-अध्ययन किया जाना चाहिए कि इन फसलों के चलन का लोगों के स्वास्थ्य और प्रकृति पर क्या असर पड़ेगा। वैज्ञानिक समुदाय तकनीकी समिति की रपट पर यह सवाल भी उठा रहा है कि वह कोई वैज्ञानिक अध्ययन नहीं है। उनके अनुसार कृषि की शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री से यह बात साबित हो चुकी है कि जीएम फसलों से न केवल पैदावार में बढ़ोतरी हुई, बल्कि कीटनाशकों के उपयोग में भी कमी आई है।

इस विवाद की एक दिलचस्प बात यह है कि न्यायालय की तकनीकी समिति जिस बीटी कपास को किसानों की तबाही का कारण मानती है उसके बारे में इन वैज्ञानिकों ने कसीदे पढने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। वैज्ञानिकों का घोषणा-पत्र कहता है कि मिट्टी और पानी जैसे संसाधनों की सीमाओं को देखते हुए भविष्य का खाद्य संकट बीटी कपास जैसी तकनीक के सहारे ही हल किया जा सकता है। पक्ष-विपक्ष की इस लामबंदी में उच्चतम न्यायालय की खंडपीठ के इस वक्तव्य से यह मुद्दा और जटिल हो गया है कि मसले से जुड़े हर पक्षकार की बात सुने बिना वह कोई फैसला नहीं करेगी। खंडपीठ की नजर में जिन्हें पक्षकार माना जा रहा है उनमें जीएम फसलों का शोध और व्यापार करने वाली कंपनियां भी शामिल हैं। इसलिए उसने सात नवंबर को कंपनियों के समर्थन करने वाले संगठन को भी अपना पक्ष रखने का मौका दिया है। यह ठ्ठीक है कि कंपनियों को पक्षकार मानने का मतलब उनका पक्ष-पोषण करना नहीं है और इस मामले में हमें किसी भी पूर्वग्रह से बचना चाहिए, लेकिन उदारीकरण के दो दशकों का औसत अनुभव यह रहा है कि पूंजी और जनकल्याण के बीच जब भी कोई विवाद खड़ा हुआ है तो जीत पूंजी की ही हुई है। बहरहाल, जीएम फसलों के पक्ष-विपक्ष में दिए जा रहे इन तर्कों के बाद कम से कम यह तो साफ हो गया है कि यह मसला विज्ञान और तकनीक का नहीं, बल्कि राजनीतिक है। कंपनियों की मार्फत पूंजी के हित-साधन में लगे पैरोकार जब यह कहते हैं कि जीएम फसलों पर रोक लगाने का आग्रह विज्ञान का अपमान है तो दरअसल वे भी राजनीति ही कर रहे हैं। विज्ञान की इस राजनीति का अगर कोई उल्लेखनीय पहलू है तो यही कि वैज्ञानिक सामाजिक कल्याण और सरोकारों की भाषा बोल रहे हैं। जबकि आमतौर पर समाज की चिंता करने वाले समूह जीएम फसलों की असामाजिकता, सीमित उपयोगिता और उसके दूरगामी नुकसान पर अपना नजरिया और आपत्ति काफी पहले स्पष्ट कर चुके हैं। याद करें कि इस संदर्भ में संसदीय समिति पहले ही अपनी आशंकाएं जाहिर कर चुकी है। समिति के एक वरिष्ठ सदस्य ने कुछ अरसा पहले तर्क दिया था कि भारत में बीटी-कपास का अनुभव किसानों की बेहतरी के लिहाज से कोई उम्मीद नहीं जगाता, क्योंकि बीटी कपास के वर्चस्व के चलते एक तरफ कपास की पारंपरिक किस्में चलन से बाहर होती जा रही हैं तो दूसरी ओर किसान कर्ज के अंतहीन जाल में फंसते गए हैं। बीटी-कपास के दशक भर लंबे अनुभव का सार यह है कि उसकी खेती के लिए किसानों को ज्यादा पूंजी की जरूरत पड़ती है।

हाल ही में हैदराबाद में आयोजित जैव-विविधता के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान जब कई विशेषज्ञ खुद जीएम तकनीक के प्रभाव का जायजा लेने आंध्रप्रदेश के एक गांव में

पहुंचे तो उनकी खुशफहमी को थोड़ा-सा झटका जरूर लगा होगा। वहां पहुंचे वैज्ञानिक और बीज कंपनियों के प्रतिनिधि बहुत उत्साह के साथ बता रहे थे कि बीटी-कपास को अपनाने से न केवल पैदावार में इजाफा हुआ, बल्कि किसानों को कीटों से भी मुक्ति मिली है। इसके बाद जब खुद किसानों से पूछा गया कि कपास की इस किस्म को लेकर उनका अपना अनुभव क्या है तो सच्चाई उतनी इकहरी नहीं निकली। किसानों ने बताया कि कपास के कीड़ों और पैदावार की बात तो ठीक है, लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति जस की तस है। किसानों का कहना था कि अब भी उनकी लागत कपास के मूल्य से ज्यादा बैठती है। पहले किसानों को एक लीटर कीटनाशक पर दो सौ रुपए खर्च करने पड़ते थे, जबकि अब यह खर्चा दो से तीन हजार रुपयों के बीच बैठता है। इसलिए यहां गौरतलब बात यह है कि जब जीएम तकनीक का गुणगान किया जाता और उसके फायदे गिनाए जाते हैं तो उसका यह पहलू भुला दिया जाता है कि इसके लिए किसानों को बढ़ी हुई कीमत देनी होती है। जैव तकनीकी का व्यवसाय करने वाली कंपनियां शोध पर खर्च होने वाली रकम किसानों से ही वसूल करती हैं। इस तरह देखें तो वैज्ञानिक समुदाय जब मौजूदा विवाद को विज्ञान बनाम राजनीति का रंग देना चाहता है तो यह पहली ही नजर में दिख जाता है कि असल में जीएम तकनीक के पक्ष में माहौल बनाने की राजनीति कौन कर रहा है। दो साल पहले बीटी बैंगन को आनन-फानन में मंजूरी देने के मामले में आनुवंशिक इंजीनियरिंग से जुड़ी आकलन समिति की भूमिका संदेहास्पद मानी गई थी। तब कई गैर-सरकारी पर्यवेक्षकों के साथ संसदीय समिति के सदस्यों ने भी यह माना था कि जीएम फसलों के प्रभाव, उनके स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी खतरों और उनकी लाभ-हानि के पहलुओं का आकलन करने वाली यह नियामक समिति न केवल कंपनियों के पक्ष में खड़ी हो गई थी, बल्कि एक प्रायोजक की तरह व्यवहार कर रही थी। उस समय कृषि शोध से संबंधित संसदीय समिति ने यह मांग उठाई थी कि 2009 में बीटी बैंगन के व्यावसायिक उत्पादन को दी जानी वाली मंजूरी की जांच की जानी चाहिए। समिति का मानना था कि यह मंजूरी सांठगांठ से हासिल की गई थी। बाद में आनुवंशिक इंजीनियरिंग आकलन समिति के सह-अध्यक्ष ने भी यह बात स्वीकार की थी, उन पर कंपनी और मंत्रालय की तरफ से दबाव बनाया जा रहा था। गौरतलब है कि बैंगन की इस किस्म को भारतीय कंपनी महिको ने अमेरिकी कंपनी मोंसेंटो के साथ मिल कर विकसित किया था। बाद में इस पर सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था।

इसलिए आज अगर सरकार के विभागों और संस्थाओं से जुड़े वैज्ञानिक फिर जीएम फसलों की गुणवत्ता और उनकी वृहत्तर सामाजिक उपयोगिता का मुद्दा उठा रहे हैं तो उससे एकाएक आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता, और अगर इसके जरिए वे अपनी सामाजिक प्रतिबद्धताओं का मुजाहिरा कर रहे हैं तो उनकी सरोकार-प्रियता इसलिए उथली और अंततः छद्म लगती है, क्योंकि उसमें खेती के राजनीतिक अर्थशास्त्र की समझ गायब है। जीएम तकनीक का समर्थन करते हुए वे इस बात पर ध्यान नहीं दे रहे कि खेती का प्रबंधन, बीज पर होने वाला खर्च और उसकी उपलब्धता, खेती में निहित जोखिम, उसके संभावित लाभ और हानि, किसानों की लागत आदि जैसे तत्त्व वैज्ञानिक शोध से तय नहीं होते। इस तथ्य को आम आदमी भी समझता है कि ये सारे मसले बाजार और राजनीति से निर्धारित होते हैं, जिसमें किसानों की नहीं सुनी जाती। फैसले ऊपर से थोपे जाते हैं और उनका खमियाजा किसानों को उठाना पड़ता है।

एकबारगी अगर यह भी मान लिया जाए कि जीएम तकनीक से उत्पादन बढ़ेगा तो इस सवाल का उत्तर कौन देगा कि किसानों को पैदावार की बढ़त का लाभ स्वतः कैसे मिल जाएगा? क्या वैज्ञानिक समुदाय इस बात के लिए भी संगठित प्रयास करने का साहस दिखा पाएगा कि किसानों को उनकी फसलों का सही मोल मिले? क्या जीएम तकनीक का समर्थन कर रहे वैज्ञानिक इस प्रायोजित विडंबना का उत्तर दे सकते हैं कि पारंपरिक फसलों के बंपर उत्पादन के समय में भी किसान क्यों अपनी खड़ी फसलों में आग लगा देते हैं और अपने उत्पाद सड़क पर फेंक जाते हैं? जाहिर है कि मसला सिर्फ उत्पादन का नहीं हो सकता। असल में पूरी स्थिति का मर्म यह है कि किसान को उसकी मेहनत और लागत का फल कौन देगा। लिहाजा, अगर वैज्ञानिक यह कह रहे हैं कि जीएम फसलों से किसानों का भला होगा तो यह एक सतही और भ्रामक तर्क है। इसलिए पिछले दिनों जब उच्चतम न्यायालय की तकनीकी समिति की अनुशंसाओं के खिलाफ वैज्ञानिकों ने यह कहा कि समिति की राय से विज्ञान की भूमिका और हैसियत की अवमानना होती है तो इससे कोई भी आश्वस्त नहीं हो सका। लिहाजा, वैज्ञानिक जिसे सिर्फ नई तकनीक के प्रति लोगों की कूढ़मगजता मान रहे हैं वह वास्तव में इस बात का प्रतिरोध है कि खेती के बुनियादी आधारों को दुरुस्त किए बिना जीएम

फसलों को खेती का तारणहार क्यों बताया जा रहा है। कहना न होगा कि जीएम फसलें अगर स्वास्थ्य और पर्यावरण के मानकों पर खरी भी उतरती हैं तो इसके बावजूद उनका औचित्य इस आधार पर तय किया जाना चाहिए कि चलन में आने के बाद उनका खेती और किसान पर दूरगामी प्रभाव क्या पड़ेगा। देश में बीटी कपास के चलन के बाद जिस तरह कपास की पारंपरिक किस्में व्यवहार से बाहर हो गई हैं उसे देखते हुए यह आशंका निराधार नहीं कही जा सकती कि जीएम तकनीक का प्रभुत्व कायम होने पर कहीं किसान अपने संचित ज्ञान से हाथ न धो बैठें और अंततः बीज कंपनियों की घेरेबंदी के शिकार हो जाएं। आम लोगों के जेहन से यह आशंका इसलिए नहीं जा पाती, क्योंकि पिछले दो दशक के दौरान जिन योजनाओं और पहलकदमियों को जनकल्याण के नाम पर लागू किया गया है वे अंततः बड़े किसानों और व्यापारियों, खेती के सहायक उपकरण बनाने वाली कंपनियों के हक में काम करने लगी हैं और औसत किसान उनके प्रस्तावित लाभों से वंचित रह गया है।

निष्कर्ष

यहां यह याद रखना जरूरी है कि देश की मौजूदा राजनीतिक-आर्थिक प्राथमिकताओं में किसान को सबसे नीचे रखा गया है और खेती के पक्षकारों का बहुस्तरीय जाल किसी भी लाभकारी नीति को उस तक पहुंचने से पहले ही हड़प लेता है। इसलिए मौजूदा विवाद में अगर वैज्ञानिकों के नजरिए को ही वरीयता दी जाती है तो यह विज्ञान की जीत नहीं, बल्कि व्यावसायिक स्वार्थ समूहों की जन-विरोधी राजनीति की जीत मानी जाएगी।

❖❖

For the welfare of the Farmers, the society "Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors" willing to publish E-magazine in the name of "KrishiUdyanDarpan E-Magazine (Hindi) **/ KrishiUdyanDarpan** E-Magazine (English, **Innovative Sustainable Farming), which covers across India.**

AUTHORS GUIDELINE

All authors submitting articles must be annual or Life member of SAAHAS, KrishiUdyanDarpan E-Magazine (Hindi) / KrishiUdyanDarpan E-Magazine (English, Innovative Sustainable Farming). Articles must satisfy the minimum quality requirement and plagiarism policy. Authors can submit the original articles in Microsoft Word Format through provided http://saahasindia.org portal only along with scanned copy of duly signed Copyright Form. Authors can get **Copyright Form** from website of SAAHAS. Without duly signed Copyright Form, submitted manuscript will not be processed.

- The manuscript submitted by the author(s) has the full responsibility of facts and reliable in the content, the published article in **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (English, **Innovative Sustainable Farming**) Editor/ Editorial board is not reliable with the manuscript.
- Must be avoiding recommendation of Banned Chemicals by Govt. Of India
- The manuscript submitted by the author(s) should be in Microsoft Word along with the PDF file and the pictures (Colored/Black) should be in high quality resolution in JPEG format, manuscript contains pictures are should be original to the author(s).
- Articles must be prepared in an editable Microsoft word format and should be submitted in the online manuscript submission system.
- Write manuscript in Times New Roman with font size 12 point in single spacing.
- The title should be short and catchy. Must be cantered at top of page in Bold with Capitalize Each Word case.
- Authors Names, designations and affiliations should be on left below the title. Designations and affiliations should be given below the Authors' Names. Indicate corresponding author by giving asterisk (*) along with Email ID
- Not more than five authors of one article.
- It should summarize the content of the article written in simple sentences. (Word limit 100 -150) and the full article should contains (1600 words maximum or 3 page of A4 Size).
- The text should be clear, giving complete details of the article in simple Hindi/English. It should contain a short introduction and a complete methodology and results. Authors must draw conclusions of their articles at last. The abbreviation should be written in full for the first time. Scientific names and technical nomenclature must be accurate. Tables, figures, and photographs should be relevant and appropriately placed with captions among the texts.
- Introduction must present main idea of article. It should be well explained but must be limited to the topic.
- Avoid the **Repetitions** of word's, sentences and Headings.
- The main body of an article may include multiple paragraphs relevant to topic. Add brief subheads at appropriate places. It should be informative and completely self-explanatory.
- Submitted manuscript are only running article and contains the field of Agriculture, Horticulture and Allied sectors.
- All disputes subject to Prayagraj Jurisdiction only.

ABOUT THE SOCIETY

Father of Nation Mahatma Gandhi's concept of rural development meant self-reliance, and least dependence on outsiders. India is an agrarian country and about 65% of our population lives in rural areas. But unfortunately, most of us do not have any idea about the extent of poverty and the real conditions of rural India.

With the purpose of serving the agricultural fraternity and farming community the Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors (SAAHAS) was founded in 2020 (under Society Registration Act, 1860). Among multifarious ways of serving farming community we are involved in training of the farmers by organising technology dissemination programmes in villages, guiding them to adopt good agricultural practices involving planned crop management. It helps in reducing farm base losses and motivating them to become farmer level entrepreneur rather than a simple producer. It involves initiating skill based knowledge to the student of agriculture, horticulture and allied sectors to encourage them to serve the farmers in the best possible ways.

SAAHAS calls us to look into the genuine problems of farmers and address those issues for their betterment in the arena of Agriculture, horticulture and allied sectors. Besides agriculture, horticultural crop production has been given a major focus by Govt. of India in future crop diversification, improving livelihood through doubling farmers' income, economic opportunities through export and job opportunities. While good beginning is made, much is to be achieved in different areas in agro-horticulture sector.

Apart from that, SAAHAS helps developing the culture to involve more number of women in farming, processing of crops and value addition thereof for higher returns in terms of total income. SAAHAS eagerly involves with the farmers and agriculture entrepreneur to motivate them for introducing hi-tech farming, which includes growing of high value horticultural crops in hydroponics, aeroponics, polyhouse, net house and greenhouse. The society has geared up its activities to take up the challenges of biotic and abiotic stresses, emerging needs of quality seeds and planting material and reducing cost of production.

There are several government and non-government organisations intended of farmer's welfare; still there is dire need for more involvement and attachment with the farmers. Our society's noble initiative can ensure diminishing of the persistent gap between agro-technocrats, scientists with the needy farmers. We not only ensure that the farmers choose right variety of right crop, better nutrient management through diagnosis recommended system and pest diagnosis but we also help them to sale their produce at premium rates. There is a major issue of chemical residues in food, soil and ecology which is also a big concern of the century. The Society also aims to motivate the farmers either for minimal use of chemical inputs or total adoption of organic farming. Consultancy, training, awareness programs, national and international seminars and symposia and technical services are the prime activities of the SAAHAS.

Society for advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors publishes peer reviewed scientific journal, 'Journal of Applied Agriculture and Life Sciences (JAALS)', biannually since January 2020 focusing on articles, research papers and short communications of both basic and applied aspect of original research in all branches of Agriculture, horticulture and other allied sciences. To apprise the scientists and all those who are working in the field of Agriculture, horticulture and allied sectors about recent scientific advancement is the aim of the Journal.